विनोबाजी की वाग्-गंगा में जब आध्यात्मिक ऊर्मियाँ उठती हैं और उनका मानस का जो संस्पर्श होता है वह इतना सुन्दर निर्मल और आह्लादक होता है कि व्यक्तित्व उसमें डूब डूब जाता है। प्रस्तुत संकलन में उनके जो ११ प्रवचन संकलित हैं उनका आध्यात्मिक और तात्त्विक प्रवाह मानव-जीवन की अकूत प्रेरणा-शक्ति से भरपूर है। मनुष्य चिरन्तन युग से अमृतत्व की खोज में पग बढ़ाता आया है और आज भी वह आशावादी है। वह अमृतत्व इन प्रवचनों की मधु-चेतना है।

पाठक देखेंगे कि महापुरुषों के स्मरणों में तत्त्व-चिन्तन में कार्यकर्ताओं की शक्ति-साधना में समस्याओं के समाधान में और समन्वय की प्रेरणा जगाने में बाबा के ये प्रवचन पदे-पदे मधुर व्यापकता और सामंजस्य संस्पर्श से ओतप्रोत हैं।

कौन न इन्हें पढ़कर अपना जीवन धन्य न बनाना चाहेगा?

प्रेरणा-प्रवाह

•

विनोबा

•

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ प्रकाशन
राजघाट, काशी

प्रकाशकीय

काश्मीर की पद-यात्रा पूरी करने के बाद पंजाब में लौटने पर पूज्य विनोबाजी का ध्यान इन्दौर नगर पर गया। यहाँ अहिल्याबाई के इन्दौर से उन्हें बहुत आशा बँधी। यह देश का मध्यवर्ती केन्द्र तो है ही, यहाँ मातृ-शक्ति के जागरण की भी बहुत सम्भावना दिखाई दी। उन्होंने २४ जुलाई १९६० को भाव-भीने वातावरण में इन्दौर नगरी में प्रवेश किया और पहली बार २५ अगस्त तक अर्थात् पूरे एक महीने तक तथा बाद में सितम्बर के अन्त में कुछ दिनों तक अपनी अमृत वाणी से इन्दौर को 'सर्वोदय-नगर' बनाने की दिशा में विविध आयोजनों द्वारा जन-जागृति का महान् काम किया। यहीं 'पोस्टर आन्दोलन' का सूत्रपात हुआ। 'विसर्जन आश्रम' की स्थापना हुई। सफाई आयोजन के सन्दर्भ में 'शुचिता से आत्मदर्शन' का भान कराया। कस्तूरबाग्राम की बहनों के बीच मातृ-शक्ति के विश्वरूप को ओजस्वी भाषा में प्रस्तुत किया। इतना अधिक समय बाबा ने अपनी सम्पूर्ण यात्रा में किसी और नगर को नहीं दिया और यह सद्भाग्य इन्दौर का ही रहा। अपने समय में यह सचमुच इन्द्रपुरी ही रही है। सर्वोदय-नगर बनकर ही उसका यह नाम सार्थक होगा।

इन्दौर-निवास-काल के प्रवचनों में से 'शुचिता से आत्मदर्शन' नगर अभियान और कस्तूरबाग्राम की बहनों के बीच दिये गये प्रवचनों का संकलन कस्तूरबाग्राम से 'विनोबा का सान्निध्य' नाम से प्रकाशित हो चुका है। यह संकलन 'प्रेरणा प्रवाह' नाम से प्रकाशित हो रहा है। इसमें ऐतिहासिक समसामयिक नेताओं एवं पुरुषों के स्मरण से लेकर कार्यकर्ताओं के बीच दिये गये तात्त्विक और आध्यात्मिक प्रवचन हैं। इनके साथ इन्दौर के प्रवचनों की कड़ी समाप्त होती है।

पुस्तक बहुत विलम्ब से प्रकाशित हो रही है, जिसके लिए पाठक क्षमा करेंगे।

•

अनुक्रम

१

अहिंसामूलक करुणा

अन्य प्राणी और अहिंसा का विचार

अहिंसा शब्द का उच्चारण बहुत पुराने ज़माने से होता रहा है। शायद मनुष्य के अलावा अन्य प्राणियों को यह विचार सूझता हो ऐसा दीखता नहीं है। मुमकिन है सूझता भी हो; लेकिन मनुष्य पहचान नहीं सकता। पर हमें जितना दीखता है उतना ही, सीमित हम बोलते हैं। मांसाहारी प्राणी मांसाहार करते हैं और शाकाहारी प्राणी शाकाहार। मालूम नहीं गाय को क्या सूझता है कि वनस्पति खानी चाहिए, वही खाना उचित है और मांसजन्य वस्तु का आहार उसके लिए उचित नहीं है। इस प्रकार का उचित और अनुचित का विचार कभी उसे सूझा होगा या नहीं मालूम नहीं; लेकिन सूझा हुआ दीखता नहीं है। ऐसा दीखता है कि उसकी देह प्रकृति ही कुछ ऐसी है कि वह वनस्पति ही पसन्द करती है और प्राणिजन्य वस्तु पसन्द नहीं करती।

हिरन और 'घी' की रोटी

हमारे आश्रम में एक हिरन था। जब जब खाने की घण्टी बजती थी, तब तब हम खिलाते थे। घण्टी सुनकर वह आता भी था। उसे भान हो गया था कि घण्टी बजने पर खाने के लिए आना चाहिए। एक रोटी हम उसे खिलाते थे। एक दिन जिस आटे की रोटी बनी थी उस आटे में घी डाला गया था। हमेशा वैसी रोटी नहीं बनती थी। उस दिन रोटी जब उसके सामने रखी तो हिरन ने खाया नहीं। हमेशा की तरह बिना घी की रोटी बनाकर खिलानी पड़ी। मतलब यह

कि वह शाकाहार में हमसे आगे बढ़ा हुआ था। हम लोग तो प्राणिजन्य वस्तु भी खा लेते हैं लेकिन वह उसे पसन्द नहीं करता था। उसी गन्ध की आदत उसे डाली होती तो वह क्या करता मालूम नहीं।

बैल पर अलसी का प्रयोग

वर्धा के बाजार में गोशाला का एक बैल हमने खरीदा। उसे हम अलसी की खली खिलाते थे। वहाँ तो वह अलसी की खली नहीं खाता था। उसकी आदत मूँगफली की खली खाने की थी। उसे अलसी की बदबू आती थी। हमने उसकी नाक में अलसी के तेल में भिगोये हुए कपास के दो टुकड़े रख दिये। इन टुकड़ों को वह नाक से बाहर भी नहीं निकाल सकता था। दो तीन दिन में उसकी आदत बन गयी तो अलसी की खली खाना उसने शुरू कर दिया। उसी तरह घी की आदत हिरन में लगा देते तो वह खा सकता था। वह एक मूक जानवर है अजान है उसे इस प्रकार की ट्रेनिंग दी जा सकती है।

हिरन आदत से शाकाहारी

उस हिरन ने घी की रोटी नहीं खायी इसलिए वह श्रेष्ठ शाकाहारी साबित हुआ। लेकिन by choice नहीं। आदत थी इसलिए नहीं खाया। मांसाहारी प्राणी घास नहीं खाते। शास्त्रकार कहते हैं कि उनकी आँतें घास के लायक नहीं हैं। लेकिन वे प्राणी यह सोचते हैं कि नहीं मालूम नहीं।

अहिंसा का व्यापक अर्थ

लेकिन मनुष्य अति प्राचीन काल से अहिंसा का विचार करता आया है। अहिंसा क्या है यह जब कभी सोचा जाता है तब मेरी श्रद्धा उसके व्यापक अर्थ में है। गीता में कहा है: 'न हन्ति न हन्यते'—आत्मा न मारता है न मरता है, 'न घातयति'—न मरवाता है। यह आत्मा का स्वभाव है। वह सहज है। वह कर्ममुक्त है कोई क्रिया नहीं करता;

लेकिन मारने की क्रिया हो ही नहीं सकती। जहाँ दूसरी भी सारी क्रिया नहीं होती वहाँ मारने की भी नहीं होती। मरता नहीं, मारता नहीं, ऐसा आत्मा है और वही अहिंसा है। फिर इसका सामाजिक विचार बना तब हमने उसका एक विधि-निषेधयुक्त शास्त्र बनाया। लेकिन हमारा मूल विचार यही है कि आत्मा के साथ अहिंसा जुड़ी है इसलिए हम जितने आत्म-स्वभाव के नजदीक जायेंगे उतनी अन्तस्तुष्टि और शान्ति मिलेगी और जितने आत्म-स्वभाव से दूर जायेंगे, उतनी शान्ति नहीं मिलेगी।

करुणा-परायण पुरुष भी हिंसा पसन्द करते हैं

इस तरह अहिंसा का मूल विचार और स्थूल विचार, ऐसे दो विभाग जीवन में बन गये और आज तक मनुष्य मानता आया है कि अहिंसा अच्छी है उसका पालन अच्छा है लेकिन मनुष्य के रक्षण के लिए—विशेष के लिए—जब किसी पर हमला होता है तब हिंसा की जा सकती है और वह हिंसा अहिंसा में गिनी जा सकती है। इस प्रकार मनुष्य का विचार चलता ही रहा। यह देखा जाता है कि बहुत करुणा-परायण पुरुष भी हिंसा को पसन्द करते हैं यह समझकर कि उससे मदद मिलेगी। कम्युनिस्टों ने हिंसा को मान्य किया गरीबों के हित में। उसके मूल में करुणा है। समाज-शास्त्रकारों ने अपराधियों को तरह-तरह का दण्ड देना मान्य किया। उसके मूल में भी करुणा है। परशुराम ने परशु उठाया, ब्राह्मण होकर भी क्षत्रिय का काम किया—उसमें भी करुणा है। इसलिए हमने परमेश्वर से सिर्फ करुणा नहीं माँगी है। ज्ञान, प्रेम और करुणा माँगी है। जो दोष करुणा में आ सकता है वह प्रेम में भी आ सकता है। इन दोनों को निर्दोष बनाने के लिए ज्ञान की आवश्यकता है। इसलिए ज्ञान, प्रेम और करुणा मिलकर एक पूर्ण विचार बनता है।

अहिंसा के विचार में विकास की मदद

समाज में हिंसा भी कायम चलती है। चाहे वह सरकार के जरिए

हो या अन्य किसीके जरिये—उसमें एक दबाव का अंश ही मान्य किया जाता है वह भी करुणा की प्रेरणा से ही। अभी तक मनुष्य के सामने यह विचार साफ नहीं हो रहा है कि अहिंसा के हित में क्या-क्या किया जा सकता है और क्या क्या नहीं। अब सायंस का युग आ रहा है। वह शस्त्रों की भयानकता दिखाकर सोचने में मदद दे रहा है और सोचने के लिए लाजमी कर रहा है।

एटम बम के खिलाफ बोलनेवाले अहिंसक हैं ?

आज कई दयालु लोग भी हिंसा के खिलाफ नहीं हैं। वे एटम बम के खिलाफ हैं लेकिन फौजों के खिलाफ नहीं हैं। कन्वेन्शनल वेपन्स, जिनको मामूली शस्त्र कह सकते हैं उनका उपयोग हो ऐसा वे चाहते हैं। इसलिए एटम बम का उपयोग बन्द हो ऐसा चाहनेवाले सीमित हिंसा चले यह चाहते हैं। यह इसलिए कि दंड चल सके। उन बड़े शस्त्रों ने तो इन छोटे शस्त्रों की इज्जत कम की है इसलिए वे चाहते हैं कि बड़े शस्त्र न चलें ताकि छोटे शस्त्र चलें और दंड-शक्ति का व्यवस्था चले पेच चले और हम बचायें। आज दुनियाभर के सारे राज्य दंड-शक्ति पर खड़े हैं। अगर आणविक शस्त्र चलेंगे, तो उस हालत में इन छोटे शस्त्रों की कुछ चलेगी नहीं और वह दंड-शक्ति खत्म होगी इसलिए वे घबरा गये हैं कि दंड कैसे चलेगा ? जो अत्यन्त तीव्रता से आणविक वेपन्स के खिलाफ बोलते हैं वे अवश्य ही अहिंसा में सोचते हैं ऐसा नहीं कहा जा सकता; बल्कि दंड जारी रहे इसीलिए वे ऐसा सोचते हैं। धर्मराज युधिष्ठिर को मिथ्या बोलने की प्रेरणा दो बार हुई वह करुणामूलक ही थी। बहुत करुणावान् लोग सोचते हैं कि संतति-नियमन होना चाहिए। एक करुणा सन्तति नियमन करने के लिए कहती है और दूसरी करुणा दुश्मनों को दंड देने के लिए कहती है। एक करुणा यह है, जो मजबूरन नियमन बनाती है और एक करुणा यह है जो वासना के क्षय के बिना अहिंसा नहीं चलेगी, यह कहती है।

गौतम बुद्ध की महान् खोज

वासना के क्षय के बिना अहिंसा नहीं चलेगी यह करुणा गौतम बुद्ध को सूझी। यह करुणा उसे नहीं सूझती तो वह मजदूर यूनियन बनाने में लगा रहता और कानून बनाकर प्रचार-काम में लगता। लेकिन वह सत्य की खोज में पैठा और करुणा का स्रोत कहाँ से चलता है यह पहचानने के लिए खोज की। खोज यह थी कि मनुष्य को वासना-क्षय करना चाहिए। हम गाय के प्रति करुणा दिखाते हैं और चाहते हैं कि गाय बचे। लेकिन वासना बढ़ायेंगे तो गाय खत्म होगी। आज गाय है लेकिन कल हम अपना खानदान बढ़ाते चले जायेंगे तो मनुष्य गाय और बैल को अपना हरीफ, दुश्मन मानेगा और उनको खत्म करने की तजवीज तरकीब जरूर ढूँढेगा। इसलिए मूलभूत करुणा वासना-क्षय में से आती है। करुणा का विचार पुराना है। वासना-क्षय का विचार भी पुराना है। मुक्ति की खोज में वासना-क्षय का जो विचार आया है वह भी पुराना है। करुणा के बिना समाज सुखी नहीं हो सकता यह खोज भी पुरानी है। करुणा के लिए वासना-क्षय तक पहुँचना है। यह खोज जहाँ तक हम जानते हैं गौतम बुद्ध की है और उसके बाद बहुत सन्तों ने उसको उठाया है।

व्यक्तिगत और सामाजिक क्षेत्र में करुणा

बहुत लोग कहते हैं कि हिन्दुस्तान गिरा और प्रतिकार नहीं कर सका इसका कारण है बुद्ध की परम्परा जिसने हिन्दुस्तान को और दुर्बल बनाया। लोग समझते हैं कि कुछ लोग वासना क्षय करेंगे तो कुछ लोगों को मदद ही होती है। अतः लोगों ने संतों के उन विचारों का विरोध नहीं किया। लेकिन जहाँ आज हम करुणा के लिए सामाजिक क्षेत्र में वासना-क्षय लाते हैं तो समाज उसे पसन्द नहीं करता। एक आदमी त्याग करे, तो समाज उसे पसन्द करता है। लेकिन वह आदमी अपने समाज को दूसरे समाज के लिए त्याग करने के लिए सिखाये तो समाज

उसे पसन्द नहीं करेगा। त्यागी और वैरागी मनुष्य अच्छा है लेकिन वह त्याग और वैराग्य सारे समाज को सिखाना और त्याग कराना समाज को पसन्द नहीं है। एक समाज को दूसरे समाज के लिए त्याग करना चाहिए, यह समझाने के लिए यह कहे कि हिन्दुस्थान को पाकिस्तान की मदद करनी चाहिए या पाकिस्तान को हिन्दुस्थान के लिए प्रेम से त्याग करना चाहिए, तो समाज उसके खिलाफ खड़ा होगा और कहेगा कि यह मनुष्य समाज-द्रोही है, देश-द्रोही है। सारांश इस प्रकार का आक्षेप वासना-क्षय और करुणा के लिए नहीं है। करुणा तो सबको पसन्द है वासना-क्षय भी पसन्द है लेकिन जहाँ आपने वासना-क्षय का सम्बन्ध समाज से जोड़ा वहाँ वासना-क्षय के खिलाफ समाज उठेगा। आप इसको सामाजिक तत्त्व बनाते हैं तो समाज पसन्द नहीं करेगा। यह जो विचार चारा है वह सिर्फ हिन्दुस्थान में ही नहीं बल्कि सारी दुनिया में चलती है। ईसामसीह के खिलाफ नीत्शे उठा। कम्युनिस्ट भी सोचते हैं कि आपने वासना-क्षय और करुणा ये शब्द दिये यह हम लोगों के लिए सोचने की बात है।

शाखाग्राही और मूलग्राही करुणा

हम करुणा चाहते हैं लेकिन किस तरह की? हम मल-मूत्र-सफाई के लिए जाते हैं बीमारों की सेवा करते हैं—उसमें करुणा होती है। अनेक आपत्तियों में गृहस्थाश्रमी फँसे हैं और संतान बढ़ी है उस हालत में मदद करने की इच्छा होती है। यह भी करुणा है। क्या यह करुणा उन गृहस्थों को समझायेगी कि तुम नाहक भोग में पड़े हो इसलिए भोग मुक्त हो जाओ? वे भोग में पड़े हैं तो यह करुणा उनकी मदद करती है। इसलिए यह शाखाग्राही करुणा है मूलग्राही नहीं।

दुःख-मुक्ति के लिए वासना-क्षय आवश्यक

तुकाराम ने मानसिक विकास के क्रम में आखिरी मौके पर कहा है: काम नाहीं काम नाहीं झालों पारी रिकामा। इसके दो अर्थ होते हैं।

काम नहीं है क्योंकि कामना नहीं है। 'असत्या छंदे असत्या छंदे जग विनोदे विपत्तसे। दुनिया दुःख कर रही है शोक रही है विनोद में, लेकिन दुनिया को उस वेदना भोग में आनन्द आता है। इसलिए उसको वेदना से छुड़ाने का प्रयत्न मैं नहीं करूँगा। एकाएकी दुःख कोई निराश। इसलिए तुकाराम कहता है कि वह लोगों से अलिप्त हो गया है। वह मानता है कि उन लोगों को दुःख से अलग कर, तो अच्छा नहीं लगेगा। उनको उसीमें अच्छा लगता है इसलिए विनोद में दुनिया बिलखाती है। यह बड़ा कठोर वाक्य मालूम होता है लेकिन उसमें मूल करुणा का है। तुम वासना बढ़ाते रहो तो दुःख पाते रहो। तुम्हें दुःख मिलता रहेगा। यह सिलसिला तोड़ना है, तो वह काटनी होगी। इसलिए वासना क्षय की ओर जाना ही होगा। वासना क्षय की तरफ जाना ही है और कदम-ब-कदम जायेंगे तो किस तरह वासना-क्षय होगा? गौतम बुद्ध ने इसीलिए कहा है कि वासना और तृष्णा सारे दुःखों का मूल है, उसे काटना ही होगा। तो क्या जिजीविषा तोड़नी है? वासना-क्षय के लिए क्या यह भी करना है? यह तो आखिरी कदम है। जब तक हम यह समझेंगे कि हरएक को जिजीविषा है तब तक हम दूसरे प्राणी की हिंसा नहीं करेंगे। जैसी हमें जिजीविषा है वैसे दूसरों को भी है। मुझे भूख है वैसे दूसरे को भी है। इस तरह आत्मौपम्य दृष्टि से देखो तो उसको भी जीने की इच्छा है और वासनाएँ भी हैं। आरम्भ से छूटेगी नहीं तो आरम्भ कहाँ से करना होगा?

कुवासनाएँ छोड़नी हैं

जिन वासना के कारण स्वयं ही शरीर की इन्द्रियों की समाज की हानि होती है उसे काटना होगा। शराब से शरीर, मन खराब होता है—यह साफ बात है लेकिन यह साफ नहीं हुआ तब तक तो यत्न करना होगा। दूसरी वासना है पर-स्त्री के साथ सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए। माने पहले कु-वासना पर प्रहार करना होगा। वासना में कुछ कु-वासना

है और कुछ सद्-वासना—पर समझकर जो मान्य कु-वासनाएँ हैं उन्हें छोड़ना ही होगा। सद्-वासनाएं रहेंगी। उनमें क्रम बिठाना होगा।

वासना-क्रम बिठाना है

"जिस वासना के लिए सबके मन में चाह है लेकिन जिसकी पूर्ति के साधन कम हैं वह वासना चाहे सद्वासना ही हो, जितनी कम कर सकें करें। यह दूसरी कसौटी होगी। सद्वासना में भी जिनका सबको उपयोग नहीं मिलता है उन्हें छोड़ना पड़ता है। शास्त्रकारों ने कहा है—ॐ और राम की जो बात चली उसमें—जब ॐ बोलना है, तब ॐकार के लिए शुचिर्भूत होना होगा। स्नान आदि करके बोलना पड़ता है। लेकिन राम-नाम अगर लेना है तो किसी चीज की कोई जरूरत नहीं। शास्त्रकार कहते हैं कि स्त्रियाँ महीने में चार-पाँच दिन अलग रहती हैं उस रजस्वला की अवस्था में ॐकार का मन्त्र नहीं बोल सकतीं लेकिन राम-नाम बोल सकती हैं। राम-नाम एक ऐसा साधन खोल दिया जिसे पापी-पुण्यवान्, शुचि-अशुचि सब बोल सकते हैं। इसलिए हम ॐकार की वासना भी नहीं रखेंगे राम नाम ही बोलेंगे। सार यह कि सद्वासना सबके लिए न हो तो उसका त्याग करना चाहिए, छोड़ना चाहिए। १ कुवासना छोड़नी चाहिए। २. सद्वासना जो सबको उपलब्ध न हो सबको उसका साधन नहीं है छोड़नी चाहिए। कम-से-कम उसका साधन सबके हाथ में आने तक छोड़नी चाहिए। ३ सबको सद्वासना उपलब्ध है पूर्ति का साधन है—जैसे खाने के लिए मिठाई सबको उपलब्ध है तो बहुत खाते हैं। लेकिन इसमें संयम का सवाल आयेगा। चाहे सबके लिए उपलब्ध हो फिर भी शरीर और मन पर असर न आये कि कोई काम ही न कर सके, ऐसी अवस्था न हो। इसलिए उसका अधिक मात्रा में सेवन न हो। यहाँ मात्रा का सवाल आया। जिन सद्वासनाओं की पूर्ति का साधन सर्वत्र है उनको भी मात्रा में लेना चाहिए। क्योंकि बुद्धि पर, शरीर पर बुरा असर न हो।

जहाँ मात्रा तक यह विचार पहुँचता है और सद्भोग पर भी पाबन्दी आती है वहाँ और विचार भी सामने आता है।

सद्वासनाओं का त्याग

फलाहार हो तो सर्वोत्तम। मिताहार उत्तम आहार है। लेकिन फलाहार की इच्छा हो और भूख लगे, और भूख सहन नहीं होती इसलिए खाना ही पड़े यह लाचारी की अवस्था भी नहीं आनी चाहिए। समय पर खायें लेकिन क्षुधा की पीड़ा सहन नहीं कर सकते ऐसी हालत न आये। ऐसी हालत में अपने पर ही हमारी सत्ता नहीं रहती। जिन वासनाओं से मनुष्य लाचारी, सत्त्व और काबू खोता है उन वासनाओं को भी काबू में रखने की कोशिश होनी चाहिए। इसलिए फलाहार को छोड़कर निराहार का विचार आया।

सारांश वासनाओं के निराकरण का क्रम यह होगा :

१ कुवासना का त्याग

२ सद्वासना भी सबको उपलब्ध न हो, तो उसका त्याग

३ सद्वासना हो लेकिन उसके भोग में मात्रा और

४ व्याकुलता को काबू में रखने के लिए सद्वासना का त्याग।

इन्दौर —रचनात्मक कार्यकर्ता-शिविर में

९-८-१

२

जीवन का समीकरण = त्याग, + भोग,

भारतमाता ने पारतन्त्र्य में भी प्रतिभा प्रकट की

सब जानते हैं कि लोकमान्य तिलक अपने जमाने में अद्वितीय थे। भारत पर परमेश्वर की बहुत कृपा रही कि इस जमाने में अपने-अपने क्षेत्र में कई अद्वितीय पुरुष हुए। यह भारत की बहुत बड़ी विशेषता रही। रामकृष्ण समन्वय में अद्वितीय थे। महात्मा गांधी अनासक्त कर्मयोग में अद्वितीय रहे। श्री अरविन्द योग के क्षेत्र में अद्वितीय थे। रवीन्द्रनाथ ठाकुर का काव्य प्रतिभा में अद्वितीय स्थान है। इस प्रकार अद्वितीयों का समूह हिन्दुस्तान में तब हुआ जब कि हिन्दुस्तान अंग्रेजों की गिरफ्त में था। लोकमान्य की गणना ऐसे अद्वितीयों में है। यह नजारा यह इस प्रकार कम देखने को मिलता है कि कई अद्वितीय एक जमाने में एकत्र हो जायें। अर्थात् भारतमाता ने पारतन्त्र्य में भी प्रतिभा प्रकट की।

नेता आत्म-संशोधन में लग गये बचे नहीं

दूसरे देशों के इतिहास बताते हैं कि देश की गुलामी में या तो लोगों ने बगावतें कीं या लोग दब गये। लेकिन हिन्दुस्तान के इतिहास में तीसरा ही रूप देखने को मिलता है। अंग्रेजों के राज्य की स्थापना के बाद यहाँ छुटपुट बगावत लोगों ने की लेकिन ज्यादा नहीं। लोगों ने न बगावतें कीं न देश ने दब जाना पसन्द किया। बल्कि नेता आत्म-संशोधन में लग गये। चिन्तन करनेवाले नेता आत्म-संशोधन में लग गये कि इतने दूर से लोग आये और हम पर हुकूमत कायम की तो हमारे समाज शरीर में और हम लोगों के मानस में कुछ दोष होने चाहिए और

उन दोषों का निरसन करने पर भारत को अपनी प्रतिमा प्रकट करने का सहज ही मौका मिलेगा। अतः यहाँ के नेताओं को सूझा कि देश की प्रकृति के दोषों का संशोधन और निवारण होना चाहिए और उसमें पश्चिम की संस्कृति का थोड़ा लाभ लेना चाहिए।

समाज-सुधार और संशोधन

इसलिए समाज-सुधार, धर्म-सुधार, उपासना सुधार, तत्त्वज्ञान-सुधार हुआ। उसके लिए ब्रह्म-समाज, देव-समाज आर्य-समाज, प्रार्थना-समाज थियासोफिकल समाज—ऐसे तरह-तरह के अनेक समाज स्थापित हुए। उन्होंने समाज-सुधार की बात की और संशोधन किया।

भारत का अद्वितीय इतिहास

रामकृष्ण परमहंस ने सब साधनाओं का अनुभव ले समन्वय अनुभव किया। इस्लाम, ईसा, बौद्ध, हिन्दू, वैष्णव, शाक्त-पन्थ ऐसी विविध साधना करके एकानुभूति प्राप्त की। इस प्रकार के समाज-संशोधन और समाज-सुधार का कार्य पारतन्त्र्य के बाद लोगों को सूझे यह मिसाल जहाँ तक इतिहास का मुझे भान है भारत के इतिहास में ही हुई है। इसके बाद स्वराज्य की आकांक्षा पैदा हुई। स्वराज्य के लिए आन्दोलन हुआ, स्वराज्य की योजना हुई और स्वराज्य प्राप्त हुआ।

महात्मा गांधी : संस्कृति की फलश्रुति

अब सर्वोदय का विचार निकला है। ये सारी बातें एक के बाद एक हो गयीं। लेकिन मूल में आत्म-संशोधन की प्रवृत्ति ही थी। परतन्त्रता के बाद यह हुआ। इससे प्रकट है कि इस देश के शरीर की प्रकृति में इतना सत्त्व भरा है। हजारों वर्षों के चिन्तन के परिणामस्वरूप यह हुआ है इसका दर्शन इसमें मिलता है। इसने मेरा दिल बहुत खींचा है और बार-बार मैंने इसका जिक्र भी किया है कि पारतन्त्र्य के बावजूद यहाँ के लोक-नेता आत्म-संशोधन के काम में लगे रहे उसके परिणामस्वरूप जो

स्वराज्य-प्राप्ति का साधन सूझा वह अद्वितीय था। पहले वह साधन आजमाया नहीं गया था। पर वह साधन भी भारतीय सम्यता की देन थी। महात्मा गांधी यदि न भी होते तो यह चीज न बनती, ऐसी बात नहीं। वे न होते तो यहाँ की सम्यता दूसरे को जगाती। पर यहाँ की संस्कृति की फलश्रुति है, जो महात्मा गांधी के रूप में प्रकट हुई।

राजनीति आपद्धर्म

भारत के अर्वाचीन इतिहास में ऐसा दृश्य देखने को मिलता है कि यहाँ लोगों का संशोधन हुआ और जीवन के विविध क्षेत्रों में अनेक श्रेष्ठ तीव पुरुष पैदा हुए। उन्हीं में लोकमान्य हैं। उन्होंने सिखाया कि 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध हक है और वह हम हासिल करके रहेंगे। उस समय लोकमान्य से पूछा गया था कि स्वराज्य के बाद आप कौनसा पोर्टफोलियो लेंगे? तो उन्होंने कहा था कि राजनीति में मैं मजबूरन से हूँ। धर्म रुक रहा है देश का विकास रुक गया है इसलिए लाचारी से मैं राजनीति में हूँ राजनीति मेरा काम नहीं है। स्वराज्य-प्राप्ति के बाद तो मैं वेदों का संशोधन करूँगा या गणित-विद्या का संशोधन करूँगा। यह तो मैंने आपद्धर्म के तौर पर कबूल किया है।

नोआखाली की यात्रा क्यों?

अभी तक हम इतना ही समझते हैं कि राजनीति में ताकत है। लेकिन अब वह समझने के दिन आये हैं कि राजनीति में एक जमाने में ही ताकत थी आज नहीं है। स्वराज्य-प्राप्ति के पहले जो लोग राजनीति में थे, वे लोग लोगों के उत्थान के लिए राजनीति तब आवश्यक जरूरी होती है इसीलिए थे। वह राजनीति नहीं है। वह तो लोकनीति होती है चाहे उसका स्वरूप राजनीति जैसा दीखता हो इसलिए स्वराज्य के आखिरी आन्दोलन में अनेक धार्मिक पुरुषों ने सहयोग दिया और अपना काम छोड़कर इसमें आये। वह लोकनीति थी। अगर वह राजनीति होती, तो स्वराज्य के बाद महात्मा गांधी नोआखाली में न दीखते। जैसे बैरिस्टर

जिन्ना ने अपने अधिकार हाथ में लिये थे और पाकिस्तान की बागडोर सँभाली थी। मार्गदर्शन का जिम्मा उठाया था, वैसा महात्मा गांधी भी कर सकते थे। लेकिन वे जानते थे कि स्वराज्य के बाद हमें लोकनीति करनी है और लोकनीति के तौर पर स्वराज्य के बाद कांग्रेस को लोक-सेवक-संघ बनाने की हिदायत उन्होंने दी। मृत्यु के अन्तिम दिन उन्होंने यह हिदायत दी। क्योंकि कांग्रेस के नाम को वे और उज्ज्वल रूप देना चाहते थे और उसे उज्ज्वल करना चाहते थे।

जहाँ त्याग वहाँ बल

बात ऐसी है कि जिस क्षेत्र में त्याग करना पड़ता ही है, त्याग के बिना जो क्षेत्र खड़ा नहीं होता, उसमें ताकत होती है। अंग्रेजों के जमाने में स्वराज्य के पहले कांग्रेस का मेम्बर बनना याने अंग्रेजों के खिलाफ नाम जाहिर करना था। खादी की टोपी पहनना उनका गुस्सा मोल लेना था। एक तरह से सैनिक बनना था। उस जमाने में उसमें बहुत तकलीफ उठानी पड़ती थी। आज कांग्रेस का मेम्बर बनना याने कुछ पाने की बात होगी, खोने की नहीं। सार यह कि राजनीति में तब ताकत थी। उस जमाने में राजनीति में आना याने लाठी खाना, जेल जाना, मार खाना, कोड़े खाना, फाँसी पर चढ़ना—यह सारा राजनैतिक क्षेत्र में होता था। वह ताकत आज नहीं दीखती है। आज राजनीति में त्याग नहीं है। तो आज शक्ति कहाँ है? समाज-क्षेत्र में है। धार्मिक क्षेत्र में है। उसमें हम काम करते हैं तो त्याग करना पड़ता है। 'यत्र त्याग तत्र बल'—जहाँ त्याग है वहाँ बल है।

सत्ता में कमलपत्रवत् रहें

मैं मानता हूँ कि आज राजनीति में त्याग का मौका नहीं है, तो भी त्याग कर सकते हैं। जैसे जनक महाराज ने त्याग किया था। वैसे मैं चाहता हूँ कि जिनके हाथ में सत्ता है, वे जनक महाराज का या भरत का आदर्श अपने सामने रखें। ये दो बड़े पुरुष यहाँ हो गये।

ऐसा हो सकता है। लेकिन आज राजनीति में स्वाभाविकतः त्याग का क्षेत्र है ऐसा नहीं कह सकते। त्याग कोई करेगा और बावजूद भोग के वह त्याग करेगा तो वह त्याग परम उज्ज्वल होगा। लेकिन वह स्वाभाविक नैसर्गिक, प्राकृतिक त्याग का क्षेत्र नहीं है। वह भोग का क्षेत्र है। इसलिए आज समाज-सेवा में बहुत त्याग है। शक्ति समाज सेवा के क्षेत्र मे है। आज तरह-तरह की सेवा की जरूरत है। शक्ति का अनुसन्धान त्याग मे है यह सोचना जरूरी है।

नवबाबू के त्याग की अत्यन्त उपेक्षा

मैं आपको मिसाल देता हूँ। नवबाबू उड़ीसा के मुख्य मन्त्री थे। वे भूदान मे आना चाहते थे। उन्होंने त्याग-पत्र देने का सोचा भी था। उनसे मेरी मुलाकात कई बार होती थी लेकिन एक भी मुलाकात में मैंने उनको यह नहीं समझाया कि इस पद को आप त्याग दीजिये। मैं यह नहीं मानता कि इस तरह की सलाह किसीको दी जाय। वे अपने विचार कांग्रेस के सामने रखते थे। आखिर उन्होंने देखा कि उनके मन में तड़पन है तो उन्होंने छोड़ दिया। उनके त्याग की प्रशंसा करने वाला कोई आर्टिकल आपने पढ़ा ? किसीको लिखने की प्रेरणा नहीं हुई। मैंने उनकी प्रशंसा नहीं की क्योंकि उनकी प्रशंसा करना अपनी प्रशंसा करने जैसा होगा। लेकिन आखिर मैंने देखा कि उनके त्याग की अत्यन्त उपेक्षा हो रही है। तब मैं तमिलनाड मे घूमता था। वहाँ माणिक्कवाचकर एक महान् तत्त्वज्ञानी फकीर की कोटि के हो गये। उन्होंने उस जमाने में प्रधानमन्त्री पद का त्याग किया और बहुत बड़े भक्त बन गये। उनके भजन हर बालक के कंठ पर हैं। उनके गाँव हम गये थे। उस दिन माणिक्कवाचकर की भारतीय मिसाल देकर मैंने नवबाबू की बात रखी। मैंने लोगों से कहा कि अगर राज्यसत्ता के जरिये क्रांति हो सकती थी तो माणिक्कवाचकर ने वह क्यों छोड़ी ? राज्यसत्ता से क्रांति होती तो गौतम बुद्ध सत्ता का त्याग क्यों करता ?

ऐसी मिसालें प्राचीन काल में हुईं, तो अर्वाचीन काल में भी ऐसी मिसालें हो रही हैं। इस तरह मैंने नवबाबू की मिसाल देकर उनकी प्रशंसा की। त्याग की कितनी उपेक्षा अपने देश में आज है।

त्याग की उपेक्षा की दूसरी मिसाल

इसकी और एक मिसाल है। अभी आपने सुना होगा कि राजेन्द्र बाबू ने अपना वेतन कम किया। और अब वे कोई ढाई हजार रुपये ले रहे हैं। गांधीजी ने जाहिर किया था कि पांच सौ रुपया लेना चाहिए। उस जमाने के पांच सौ रुपये की कीमत आज के दो हजार रुपयों से बहुत ज्यादा है। लेकिन कितने अखबारों ने इस पर लेख लिखा? मैं घूमता रहता हूँ इसलिए सब अखबार तो मेरे पास आ नहीं सकते हैं। लेकिन जहाँ तक मेरा खयाल है किसीने नहीं लिखा। और आजकल अखबार में आता क्या है? कोई मिनिस्टर कहीं की फैक्टरी खोलने जाता है और भाषण देता है। यह खबर दो दो कालम में आती है। होना तो यह चाहिए था कि राजेन्द्रबाबू ने जो यह काम किया उसकी खबर देहात-देहात घर-घर जाकर देनी चाहिए थी।

संकट आ रहा है

इस तरह त्याग के लिए जनता आज उदासीन है। इतनी सुस्ती आज देश में है। और अब आज चीन के साथ सामना करने का मौका आ रहा है। सीमा हमें जगा रही है तो मुझे बड़ी खुशी होती है। अब हिमालय इनकार कर रहा है दोनों दलों को बांटने से। इसलिए हम उदासीन रहेंगे तो नहीं चलेगा। हिमालय कह रहा है हम आपको अलग नहीं रहने देंगे। आपको लड़ना है तो लड़ो और खत्म होना है तो खत्म हो जाओ। पर लोग क्या कहते हैं? कहते हैं कि हम सब एक होकर चीन के साथ डटकर मुकाबला करेंगे। एक होने के लिए आपको आपत्ति की जरूरत है क्या? और जब तक आपत्ति नहीं आती है तब तक क्या आप गालियाँ देते रहेंगे? अब सामना करने का मौका आयेगा

तब त्याग करना पड़ेगा। लड़ाई में तो बहुत कठिन जीवन रहता है। लेकिन आज हमारा जीवन बहुत आराम—मुलायम—बना है। भोग-विलास में पड़े हैं, रात को जागते हैं, सुबह सात-सात, आठ-आठ बजे उठते हैं। धूप नहीं सहन कर सकते, ठंड नहीं सहन कर सकते, बारिश नहीं सहन कर सकते, ऐसी हालत आज है। हम अपना ऐसा नरम जीवन कायम रखेंगे, तो टिक नहीं सकेंगे। दूसरे हमारा क्या बचाव करेंगे? क्या आपने यह समझ रखा है कि ऊपर सेना लड़ती रहे और आप भोग-विलास में पड़े रहें तो आप अपना बचाव कर सकेंगे? मुझे तो आनन्द हो रहा है कि अब लोग जग जायेंगे, त्याग करना सीखेंगे और नरम जीवन नहीं बनायेंगे, क्योंकि सामने एक संकट खड़ा है। यह हमें जगा रहा है।

जीवन के लिए समीकरण

जैसे $H_2 + O$ = पानी यह समीकरण रसायन में आता है वैसे ही मैंने जीवन का एक समीकरण बनाया है—त$_2$ + भ$_1$ = जीवन। त्याग जीवन में दो मात्रा में होना चाहिए और भोग एक मात्रा में। तब जीवन बनता है। आज तो तीनों मात्राओं में भोग चल रहा है।

वे योगी के समान थे

लोकमान्य की स्मृति में आज यह कहा। हमारे सामने उन्होंने अपनी मिसाल पेश की है। वे योगी के समान रहते थे और परमेश्वर पर श्रद्धा रखते थे। उनकी स्मृति में हम यह जीवन का समीकरण अपने जीवन में लायें।

इन्दौर —तिलक पुण्य-तिथि के अवसर पर
१-८-'६१

३

'सहचित्तमेषाम्'

'चित्त-निर्माण' की आवश्यकता

आज दुनिया में चित्त-निर्माण की जरूरत है क्योंकि विज्ञान-शक्ति बहुत जोरों से बढ़ रही है। उत्तरोत्तर बाह्य निर्माण जितने वेग से होगा, उतने ही वेग से चित्त-निर्माण हो यह आवश्यक हो गया है। इसीलिए दुनिया के भिन्न भिन्न चिन्तक बार-बार इकट्ठा होते हैं और चिन्तन-मनन करते हैं। पंजाब के लोग विचार परामर्श के लिए यहाँ आये हुए हैं। दुनिया में भी कई निमित्त ढूँढ-ढूँढकर लोग इकट्ठा हो जाते हैं। कहीं पीस कान्फ्रेन्स है, कहीं शिक्षण-शास्त्र का विचार है कहीं साहित्य विकास का विचार करना है। हिन्दुस्तान में भी पीस कान्फ्रेन्स के बारे में सोचा जा रहा है ऐसी खबर मिली है। उसमें दुनियाभर के शान्ति चाहनेवाले सम्मिलित होंगे। ऐसी परिषदें पुराने जमाने में भी होती थीं। बौद्ध और जैन अपने धर्मों के विचार के लिए इकट्ठा होते थे। उस जमाने में तो आने जाने के साधन भी नहीं थे फिर भी लोग आते थे और इकट्ठा होते थे। अब दुनियाभर के देशों के लोग इधर से उधर आते-जाते हैं। यह क्रिया बार-बार हो रही है क्योंकि आज यह जरूरी है।

एक शब्द ऋग्वेद के अन्त में आता है— 'सहचित्तमेषाम्'। यह ऋग्वेद का खास शब्द है। 'समानो मन्त्रः समितिः समानी'—हम सबका मन, हम सबकी बैठक समान हो। इसके लिए तो वेद में 'समान' शब्द का इस्तेमाल किया लेकिन यह एक नया शब्द बनाया। सबका 'सह चित्त' हो।

'समान चित्त'

'एकचित्त बनो', यह नहीं कहा। 'एकचित्त' बनेगा, तो भिन्नता का लाभ नहीं मिलेगा। एकतानता आयेगी। विचार में वृद्धि नहीं होगी। विचार का संशोधन नहीं होगा। जो विचार मेरा है, वही आपका हो, तो हम इकट्ठा क्यों होंगे? एकचित्त बनेंगे, तो विचार और चिन्तन के लिए एकत्र होने की जरूरत नहीं रहेगी। दूसरे काम के लिए भले ही इकट्ठा हों। एकचित्त होगा तो समझना चाहिए कि प्रलय होगा। चित्त-लय होगा और चित्त लीन होने पर दुनिया का लोप होगा, लय होगा। साम्यावस्था में गुण क्रिया समाप्त होगी। 'समान चित्त' की बात भी नहीं है। याने किसी एक प्रसंग पर सब एक हो गये। एक सामान्य कार्यक्रम तय किया तो समान चित्त हो गया। लेकिन यह छोटी चीज है। उस प्रोग्राम पर लोग एकता करते हैं और उसे अमल में लाने की कोशिश करते हैं। हम भी इन्दौर में यह कोशिश कर रहे हैं। लेकिन एकचित्त यानी प्रलय का स्वरूप। यह बुरी बात तो नहीं है लेकिन चित्त का प्रलय होगा तो प्रकृति का लय होगा। याने हमारी जीवनचर्या नहीं रहेगी। यह है एकचित्त और समान चित्त। समान चित्त यानी सर्वसामान्य कार्यक्रम, जिसमें सर्वसाधारण अंश समान रहेगा। भारत के लिए हम यही सुझाव दे रहे हैं कि कोई ऐसा कामन प्रोग्राम हो जिसमें मिनिमम एग्रीमेंट हो। और बातों में भले मुख्तलिफ राय हो लेकिन इतना एक प्रोग्राम बनाने के लिए हम एक हो जायें नहीं तो पार्टियाँ नाहक टकराती हैं। इसलिए न्यूनतम साधारण अंश समान रहे ऐसा प्रोग्राम करना चाहिए।

अन्योन्य बोध

'एकचित्त' और 'समान चित्त' से भी भिन्न जो 'सह-चित्त' शब्द है वह बहुत चमत्कार है, अच्छा है। उसमें समान चित्त का विरोध नहीं है लेकिन परस्पर होना आवश्यक है। आप और हम बार-बार इकट्ठा होते हैं इस तरह सह-चिन्तन की प्रक्रिया की जरूरत महसूस होनी चाहिए।

एक-दूसरे के साथ सलाह-मशविरा करना चाहिए। यह एक बहुत बड़ा मंत्र है। गीता ने इसे नाम दिया है—बोधयन्तः परस्परम्। अन्योन्य बोधदान की क्रिया होनी चाहिए। मैं बोध देता हूँ तो मैं गुरु और आप शिष्य बनते हैं। लेकिन कभी आप मुझे बोध दें और कभी मैं आपको। आप मुझे बोध देते हैं और मैं आपको। यह भक्ति-मार्ग हो गया। कुरान शरीफ में आता है: 'अमरूहुम् शूरा बैनहुम्'—आपस में सलाह मशविरा करके काम करना चाहिए। फिर उसका सह-चित्त होगा। उससे अनेकविध कार्यक्रम बनता है। इसके माने यह है कि मेरा चित्त आप पूरी तरह से जानते हैं और मैं आपका। इसलिए अन्योन्य विश्वास है।

अन्योन्य अविश्वास

आज दुनिया में अन्योन्य विश्वास की बहुत कमी है। गहराई में पैठकर समझने की कोशिश नहीं की जाती। कुछ अंश को जानते हैं कुछ अंश को नहीं जानते इसलिए अन्दाज लगाते हैं। फलतः कुछ गलत जानते हैं और एक दूसरे पर गलत हेतु का आरोपण होता है। विश्वास खो बैठते हैं। यू. एन. ओ. में आमने सामने टेबल पर बातचीत करने के लिए बैठते हैं लेकिन अन्योन्य विश्वास नहीं होता। सामनेवाला जिस हेतु से बोलता है उसके शब्द का अर्थ क्या है? माने एक शब्द के दस बीस अर्थ निकालते हैं और हेतु का आरोपण करते हैं। इससे शब्दजाल बढ़ता है और उससे विश्वास अधिक बढ़ने के बजाय एक-दूसरे को गलत समझ लेते हैं। शिखर सम्मेलन रुक गया। दोनों कहते हैं कि यह ठीक नहीं हुआ। दोनों एक-दूसरे पर आक्षेप करते हैं कि आपके कारण यह घटना हुई। दोनों एक-दूसरे के हेतु पर आक्षेप कर रहे हैं।

गलतफहमी का चक्र

इस तरह सारी दुनिया में आज अविश्वास है। यही हालत होती है—चाहे वह कांग्रेस हो या आश्रम हो या उद्योग-मन्दिर हो या भूदान मण्डल हो। वहाँ भी परस्पर अविश्वास होता है। क्योंकि हमारा चित्त

वह नहीं मानता और उसका हम नहीं मानते। एक अंश माना और बाकी के लिए गलतफहमी। थोड़ा-सा जो समझ में आया उससे ज्यादा अंदाज लगा दिया और अनुमान से ज्यादा गलतफहमी हो गयी। इस तरह शब्दों के जरिये सम्यक् ज्ञान के बजाय गलतफहमी ज्यादा बढ़ती है। समय बरबाद कम होता है!

अभी इन लोगों ने सुनाया कि आश्रम में दो बार इकट्ठा होना चाहिए। मैं इस पर जोर देता हूं कि कार्यकर्ताओं को एकत्र होना ही चाहिए, चाहे उनका समय बरबाद ही क्यों न हो। समय बरबाद कम होता है! एकत्र होने से समय बरबाद नहीं होता। जिस समय मन और चित्त में विकार आया, वह समय बरबाद हुआ। निर्विकार चित्त है और परस्पर विमर्श हो रहा है उसमें समय जाया नहीं होता। इसलिए बार बार एकत्र आने की कोशिश करनी चाहिए।

स्वच्छ मन होकर प्रार्थना

एक दफा मैंने एक किताब पढ़ी—मिशनरियों के काम के सम्बन्ध में। इंग्लैंड से मिशनरी आये और हिन्दुस्तान की अनेक भाषाओं में उन्होंने बाइबिल का तर्जुमा किया। वे कलकत्ता में रहते थे परिवार के साथ एकत्र रहते थे। उनका खाना-पीना सब साथ होता था। उन्होंने अपना एक कम्यून बनाया। ईसाइयों में रविवार के दिन सामूहिक प्रार्थना का रिवाज है। ईसा ने बोध दिया है, जब कभी आप सामूहिक प्रार्थना में आयें अपना दिमाग साफ कर लीजिये। जिनके साथ आप प्रार्थना में बैठेंगे, उनके प्रति मन में बुरी भाव न रहे। तभी प्रभु आपकी प्रार्थना सुनेगे और तभी प्रार्थना का अच्छा परिणाम आता है। *उन लोगों ने तय किया कि रविवार के दिन प्रार्थना के लिए आना है तो* शनिवार को एकत्र बैठेंगे और एक-दूसरे के लिए मन में जो संशय आये होंगे जो कोई शंका होगी वे सब खोलकर रख देंगे। जैसे गंगा पर कपड़ा धोने के लिए जाते हैं वैसे मनोमल धोने के लिए एक साथ बैठेंगे और फिर स्वच्छ मन होकर रविवार को प्रार्थना करेंगे। तो ज्यादा-से-ज्यादा एक

इससे एक संशय पैदा होगा। उसका खूब निराकरण करेंगे, प्रचार करेंगे और फिर कहेंगे, अब हमारे मन में कुछ नहीं है। फिर एकीकार की भावना करेंगे। यह जब मैंने पढ़ा तो मुझे बहुत आनंद हुआ।

मन बिलकुल खुला हो

सह-चित्त होना चाहिए। हम चित्त के कुछ कोने छिपा लेते हैं तो सह-चित्त नहीं बन सकता। समान-चित्त कॉमन प्रोग्राम के लिए ठीक है। लेकिन जब मिलकर हम काम करने जा रहे हैं उस समय एक-दूसरे के लिए मन में किसी प्रकार का संशय नहीं रहना चाहिए। एक-दूसरे का मन एक-दूसरे के सामने बिलकुल खुला रहना चाहिए, तभी सह-चित्त होगा।

मैं माँग रहा हूँ

जगह-जगह मैं कार्यकर्ताओं की माँग कर रहा हूँ। मेरी माँग है— आपमें से एक व्यक्ति का मुझे दान दीजिये और उसे आप अनुदान दीजिये। प्रारम्भ हावरम्, कहीं इस तरह एक-एक जमात की ओर से एक-एक सेवक मिलना चाहिए। मुसलमानों की तरफ से भी एक-एक सेवक निकले और उसे अनुदान वह महल्ला या जमात दे। यह सब होगा। इसमें बहुत ज्यादा मुश्किल नहीं आयेगी।

गाम्भीदान

सवाल यह है कि सारे भाई इकट्ठा होंगे तो उनका मेल बैठेगा? यह सवाल हमें ही हल करना होगा। आपस में सब एक-दूसरे की बात काटते हैं। इसका इलाज क्या है? इसलिए मुझे लगा कि बार-बार इकट्ठा होना चाहिए। कभी काम के लिए और कभी बिना काम के भी। हमारे धीरेनभाई कहते हैं कि कार्यकर्ताओं को कभी-कभी इकट्ठा होना चाहिए और गाम्भीदान का कार्यक्रम करना चाहिए। एक-दूसरे के सामने मन खोल दिया जायेगा तो सह-चित्त तैयार होगा। एक-दूसरे के लिए मन में गलत धारणा नहीं रहेगी। एक-दूसरे के गुण के प्रति नम्रतापूर्ण नहीं रहेंगे तभी सह-चित्त होगा।

हम चल नहीं सकते दौड़ नहीं सकते। तरह-तरह के काम करने में तकलीफ मालूम पड़ेगी। इसलिए प्राण-शक्ति क्षीण हो तो नहीं चलेगा। बुद्धि-शक्ति क्षीण हो तो क्या काम करना चाहिए, सूझेगा नहीं। ये दो शक्तियाँ देह-यंत्र के लिए हैं। देह भी भगवान् का पैदा किया हुआ एक यंत्र है अद्भुत यंत्र है। यंत्र में दो शक्तियाँ—गतिदायक और दिशा-दर्शक हैं। ऐसी दो शक्तियाँ इस देह में भी हैं।

विश्राम-शक्ति

जैसे मोटर के लिए दो तत्त्व जरूरी होते हैं, वैसे ही समाज-धारणा के लिए दो तत्त्वों की जरूरत रही है रहेगी रहती है। एक है—साइन्स या विज्ञान। जब अग्नि की खोज नहीं हुई थी तब रसोई बनाने का ज्ञान नहीं था। तब पचनेन्द्रिय कमजोर थी दाँत तीखे पड़ते थे सुपाक का इस्तेमाल नहीं था। अब भाप की शक्ति की नयी खोज हुई है। पेट्रोल की शक्ति की खोज हुई है। बिजली की शक्ति की खोज हुई है और आगे अणुशक्ति का भी उपयोग मनुष्य के जीवन में बहुत होगा। जीवन का बाह्य रूप ही बदल जायगा। अब यह लाउडस्पीकर है। जब नहीं था तब इतने लोगों को सम्बोध करना बहुत मुश्किल था बहुत चिल्लाना पड़ता था। लाख लाख लोग होते थे तो कितना ही चिल्लाओ काम नहीं हो सकता था। महात्मा गौतम बुद्ध को [illegible] साल की पद-यात्रा में जितने श्रोता नहीं मिले होंगे उतने श्रोता मुझे ९ साल की पद-यात्रा में मिले। इसमें न महात्मा बुद्ध की कोई कमी थी न मेरा कोई गुण है। यह साइन्स का गुण है। लेकिन पाँच-पचास लोग ऐसे ही सुन सकते थे। उसका आध्यात्मिक असर ज्यादा होता था। ज्यादा लोग हों तो असर भी ज्यादा हो यह जरूरी नहीं है, लेकिन अनेक लोगों को सुनाने की यह सहूलियत साइन्स के कारण मिली है। यह मेरा चश्मा न हो तो मैं दूर का नहीं देख सकता हूँ और पढ़ना मुश्किल होता है। चश्मे ने आँखों को नवजीवन दिया है। ऐसी [illegible] नहीं।

दो सौ साल पहले जीवन का जो स्वरूप था, वह आज नहीं रहा। भविष्य में तो अणुशक्ति का उपयोग गाँव-गाँव में होगा। अणुशक्ति विकेन्द्रित होगी। बिजली अभी उतनी विकेन्द्रित नहीं हो रही है लेकिन अणुशक्ति गाँव-गाँव में विकेन्द्रित होगी। उस हालत में खेती का काम आज जिस ढंग से हो रहा है उससे कुछ आसान ढंग से हो जायगा। यहाँ (इन्दौर में) १ तारीख से खेती-सुधार आरम्भ हो रहा है। उसमें तरह तरह के औजारों को लेकर मल-मूत्र इत्यादि की सफाई होगी। लेकिन ९५ वर्षों बाद ऐसे औजार या यन्त्र आयगे कि मनुष्य को हाथ से कोई काम करने की जरूरत नहीं रहेगी। खाद भी यान्त्रिक ढंग से होगी, सफाई भी यान्त्रिक ढंग से होगी। सब कुछ आसान होगा। आज हम भंगी-मुक्ति की बात करते हैं—वह स्वयमेव हो जायगी। भंगी की जरूरत ही नहीं रह जायगी। ये सारी बातें विज्ञान में हो रही हैं और आगे भी होंगी। विज्ञान की शक्ति मनुष्य के जीवन को बनाती है। उस जीवन की रफ्तार—गति बढ़ाती है। यह आज की एक ताकत है जो बहुत व्यापक स्वरूप में प्रकट हो रही है।

आध्यात्मिक शक्ति

रफ्तार की यह शक्ति जितने जोर से बढ़ेगी उतना ही जोरदार दिशा दिखानेवाला यन्त्र होना चाहिए वह उतना ही क्षम होना चाहिए। बैलगाड़ी को धीरे से मोड़ सकते हैं। बैलगाड़ी धीरे-धीरे जायगी लेकिन मोटर को २ मील की रफ्तार की मोटर को फौरन मोड़ने के लिए यन्त्र नहीं रहेगा तो मोटर टकरायेगी। रेल्वे का इंजन तेजी से दौड़ रहा है उसे रोकना है मोड़ना है वहाँ यन्त्र नहीं होगा तो इंजन गिर जायगा। वेग-शक्ति जितनी जोरदार—उतनी ही जोरदार दिशा दिखानेवाली शक्ति होनी चाहिए। जितना जोरदार शास्त्र होगा उतना ही जोरदार आध्यात्मिक विचार होना चाहिए। अध्यात्म दिशा दिखायेगा शास्त्र रफ्तार बढ़ायेगा वेग बनायेगा।

अब दिन-ब-दिन साइन्स बढ़ता ही रहेगा। विज्ञान-शक्ति इस जमाने में उत्तरोत्तर बढ़ रही है। जहाँ तक मैं समझा हूँ, साइन्स ने इन ११ सालों में इतनी प्रगति की है कि पहले के ११ साल में नहीं की। जहाँ साइन्स इतना जोरदार बढ़ा है वहां विद्या सिखानेवाले मंत्र की अत्यंत जरूरत है। अध्यात्म की जरूरत जितनी आज है, उतनी पहले कभी नहीं थी। बहुत से लोग कहते हैं कि यह साइन्स का जमाना है इसमें अध्यात्म की क्या चलेगी? उसकी क्या जरूरत है? लेकिन मैं पूछना चाहता हूँ कि जब साइन्स का जमाना नहीं था तब अध्यात्म को कौन पूछता था? उस समय तो परलोक की बात सोचते थे। लोगों को समझाया जाता था कि अच्छा काम करो तो मरने के बाद स्वर्ग मिलेगा नहीं तो नरक मिलेगा। इस तरह मरने की बात समझाकर लोगों को किसी तरह सन्मार्ग पर रखना पड़ता था। यह भी कहा सकते थे कि गलत काम करोगे, तो यहीं-के-यहीं गलत फल पाओगे। आज यह भी बता सकते हैं। आज एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर हमला करेगा तो फौरन दोनों राष्ट्र खतम हो जायेंगे। ऐसी ताकतें विज्ञान ने मनुष्य के हाथ में दी हैं कि गुस्सा out of date है। लोभ क्रोध द्वेष यह व्यक्ति-व्यक्ति के मन में भले चले उससे नुकसान नहीं। लेकिन कौमों-कौमों के बीच गुस्सा क्रोध लोभ चलेगा तो मरने के बाद नरक नहीं—यहीं के यहीं खतम हो जायेंगे। ऐसा प्रत्यक्ष फल दिखा सकते हैं। पुराने जमाने में अध्यात्म को पूछता कौन था।

तुलसी और शंकर

तुलसीदासजी की बात बताऊँ। वे पहले काशी में एक घाट पर रहते थे। वहाँ लोगों ने उनको इतना सताया कि वे दूसरे घाट पर भाग गये पंचगंगा से मणिकर्णिका घाट पर। वहाँ भी लोगों ने उनको बहुत सताया अलग अलग पंथों के लोगों ने बहुत सताया। वहाँ से भी भागे दूसरे घाट पर गये। आखिर बहुत सताया तो सब छोड़कर जहाँ काशी का

आखिरी हिस्सा है—टूटा फूटा घाट था वहाँ 'असी' घाट पर रहे। वहाँ चैन से रहे। वहाँ ज्यादा बस्ती नहीं थी। आज उसके दक्षिण में हिन्दू विश्वविद्यालय बना है और कुछ बस्ती है। लेकिन उस जमाने में बस्ती नहीं थी। इस तरह उन्हें बहुत तंग किया गया। लेकिन आज उनका नाम लेकर आदर से भक्ति से प्यार से झुक जाते हैं। यही हाल कबीर, ज्ञानदेव नानक नामदेव का हुआ। अब मैं कितने नाम लूँ। शंकराचार्य इतने महान् थे, लेकिन उनका भी क्या हाल था उनके जमाने में! उन्होंने अपनी माँ को वचन दिया था कि एक बार मिलने आऊँगा। संन्यासी होने के बाद भी ऐसा वचन दिया था। सन्यास की इजाजत लेकर वे गये थे और कुछ वर्षों के बाद वहाँ वापस आये, तो माँ की मृत्यु का समय था। उस समय उन्होंने माँ के लिए श्रीकृष्ण का स्तोत्र बनाया। बड़ा प्रसिद्ध है 'कृष्णाष्टकम्'। वह माँ से सुनवाया माँ को ईश्वर का दर्शन हुआ और माता मर गयी। अब सवाल आया कि माता का दाह-संस्कार कैसे किया जाय? क्योंकि शंकराचार्य ने ब्रह्मचर्य से ही संन्यास लेने का महापातक किया था! याने बीच में गृहस्थाश्रम टालने का महापातक। उस जमाने के लोगों की समझ थी कि अगर संन्यास लेना ही है तो ब्रह्मचर्य से गृहस्थाश्रम उसके आगे वानप्रस्थाश्रम और बाद में सन्यास लेना चाहिए। ब्रह्मचर्य से सन्यास लेना 'कलिवर्ज्य' है। कलिवर्ज्य याने निषेध। वह कार्य शंकराचार्य ने किया था। इसलिए उनका सामाजिक बहिष्कार किया गया। उनकी जाति का नाम नम्बूद्रि था। ऊँची-से-ऊँची जाति में से नम्बूद्रि एक जाति थी। उस जाति का एक भी मनुष्य माँ की लाश उठाने के लिए नहीं आया। अब वहाँ से लाश को उठाकर श्मशान ले जाना और वहाँ दहन करना उनके लिए एक समस्या हो गयी। इसलिए शंकराचार्य ने तलवार से माँ की लाश के तीन टुकड़े किये। अब आप देखिये समाज अपने हठ में कहाँ तक बढ़ सकता है और पुण्यवान महापुरुष कहाँ तक सहन कर लेते हैं इसका एक चित्र आपके सामने खड़ा होता है। एक-एक टुकड़ा लेकर शंकराचार्य ने

माँ का दहन किया। एक-एक टुकड़ा अलग-अलग जलाया। इसके बाद शंकराचार्य इतने महान् हो गये कि नम्बूद्रि जाति में यह विधि ही है कि मरने के बाद शव श्मशान में ले जाते हैं तो शव पर तीन जगह निशान किये जाते हैं। शंकराचार्य को माँ की लाश के टुकड़े करने पड़े—उसके स्मरण के लिए, उनके आदर के लिए यह किया जाता है। इतना आदर आज उनके बारे में यहाँ है। पर जब वे जिन्दा थे, तब आदर का सवाल नहीं था। मरने के बाद इतना आदर हुआ।

साइन्स अध्यात्म-विद्या की तरफ दौड़ रहा है

तात्पर्य पुराने जमाने में आध्यात्मिक विद्या को सब सिर पर उठाते थे, ऐसा मानने का कोई कारण नहीं है। महात्मा गौतम बुद्ध को कत्ल करने की इच्छा रखनेवाला मनुष्य निकला था। भगवान् कृष्ण पर शिशुपालादि ने आक्रमण किया था यह जाहिर है। इसलिए आज यह मानने की कोई वजह नहीं है कि पुराने जमाने में अध्यात्म विद्या की कदर ज्यादा थी। बल्कि समझना चाहिए कि आज दुनिया में, सिर्फ हिन्दुस्तान में ही नहीं जितनी उसकी कदर है उतनी पहले कभी नहीं थी। साइन्स ही धीरे-धीरे स्वयमेव अध्यात्म-विद्या की ओर दौड़ा जा रहा है बढ़ता जा रहा है। और सारी दुनिया में चेतन भरा है ऐसी शंका साइन्स को हो रही है। साइन्स बड़ा नम्र होता है। किसी चीज का फैसला आग्रहपूर्वक नहीं देता। साइन्स निरीश्वरवादी की तरह नहीं बोलता। साइन्स कहता है कि ईश्वर शायद होगा शायद नहीं होगा। अभी तक हमारी खोज में इसका निश्चय नहीं हुआ है। साइन्स न कभी आस्तिक और न कभी नास्तिक। जिसे हम जड़ कहते हैं वह जड़ नहीं, बल्कि सुप्त चेतन सोया हुआ चेतन है। एक सुप्त चैतन्य है दूसरा जाग्रत चैतन्य है। मान लीजिये कोई गणितज्ञ सोया है। सोने पर उसका ज्ञान प्रकट नहीं हुआ। वह ज्ञान सुप्त है। जागने पर प्रकट होगा। उसी तरह यह खम्भा है। उसमें नरसिंह भरा है। आपको कहानी

मालूम है। प्रह्लाद ने खम्भे पर लात मारी तो चैतन्य-स्वरूप प्रकट्य। साइन्स अभी लात मार रहा है खम्भे पर और उसे आभास हो रहा है कि शायद उस खम्भे में से चैतन्य निकलेगा। सारी दुनिया चेतनमय हो सकती है ऐसी शंका उसे है। पहले शंका ही होती है उसके बाद खोज होती है और उसके बाद प्राप्ति होती है। साइन्स भी धीरे धीरे आगे बढ़कर अध्यात्म के साथ मिल जायगा और दोनों एकत्र हो जायँगे ऐसा दिन नजदीक आ रहा है।

अध्यात्म को सँभालें

आज अध्यात्म की जरूरत है क्योंकि साइन्स की बहुत भारी ताकत मनुष्य के हाथ में आ गयी है। साइन्स का वेग बढ़ रहा है। वह गलत दिशा में जायगा तो नुकसान होगा इसकी फिक्र मनुष्य को होनी चाहिए। आप मायूस न होइये। जिसमें से यह ब्रह्म-विद्या निकली अध्यात्म-विद्या निकली उस भारतीय संस्कृति को सँभालें तो आप दुनिया को बचानेवाले होंगे और आपको दुनिया को बचाने का भाग्य प्राप्त होगा। लेकिन आप अध्यात्म को सँभालें। यह बहुत बड़ी विरासत है। उसे आप सँभालें तो सारी दुनिया को लाभ होगा। दुनिया लाभान्वित होने के लिए लाभ पाने के लिए भारत की ओर देख रही है। जितना हम पश्चिम की तरफ देखते हैं, उतने साइन्स से प्रभावित होकर उतना ही वे भारत की ओर देखते हैं। राजनैतिक आर्थिक और सामाजिक मसले दुनिया को तंग कर रहे हैं। इसलिए कोई आध्यात्मिक तजवीज तरकीब भारत ढूँढ़ निकालेगा इस दृष्टि से आशान्वित होकर दुनिया के लोग भारत की तरफ देखते हैं। दुनिया के लोग हमारे पास आते हैं। शायद ही कोई राष्ट्र होगा जिसके लोग न आये हों। वे हमारे पास रहते हैं देखते हैं और अपने देश में जाकर कहते हैं कि भारत में नया ही आविष्कार हो रहा है। क्या हो रहा है! दान प्रेम से माँगा जा रहा है और प्रेम से दिया जा रहा है। एक अजीब

बात लगती है उनको। लोग मुझसे पूछते हैं कि आपने कितना काम किया? मैं कहता हूँ कि ९ लाख एकड़ जमीन बँटी है ज्यादा तो नहीं हुआ। लेकिन बात है कि उसका हिन्दुस्तान को लाभ हुआ है—दूसरे देशों को क्या फायदा हुआ है? अमेरिका और योरप को क्या लाभ हुआ है? लेकिन वहां के लोग प्रभावित होते हैं क्योंकि मसले हल करने की कुंजी हाथ में आ रही है और यह ऐसी कुंजी है कि इससे दुनिया के मसले हल हो सकते हैं। इसलिए वे लोग चाहते हैं कि हमें पता मिले और शान्ति से मसले हल करने की कुंजी हाथ लगे ऐसा वे सोचते हैं। आज दुनिया 'त्राहि त्राहि' कर रही है और दुनिया में इस वक्त शान्ति की बहुत प्यास है। इसलिए दुनिया के कुछ देशों में अध्यात्म की तरफ आज जितना झुकाव है उतना पहले कभी नहीं था। इसलिए गलतफहमी में न रहो कि साइन्स बढ़ रहा है तरह-तरह की मशीन बन रही हैं तो अध्यात्म की क्या चलेगी? कई लाख लोगों ने हमें दान दिया। हम समझते हैं कि उनमें प्रवाहपतित दान हुए होंगे लेकिन जमीन का टुकड़ा तो बहुत प्यारा होता है वह भी एकाध लाख ने दिया हो तो भी अध्यात्म शक्ति उसमें है। आज भी मैं आपसे पूछना चाहता हूँ हिन्दी वालों से और मराठीवालों से, तुलसी रामायण और ज्ञानेश्वरी की बराबरी की कौन किताब छपी है? बताइये है कोई दूसरा नाम? छपाई की मशीनें आयी हैं—यह सहूलियत हुई है। सैकड़ों नयी-नयी किताबें लिखी जा रही हैं तो ज्ञान का प्रचार खूब तीव्रता से होना चाहिए। लेकिन नहीं हो रहा है। पहले मुद्रण-यंत्र नहीं था तो पाठ भेद रहते थे, गलत प्रतियाँ भी फैलती थीं गलत प्रचार और अपप्रचार भी होता था। आज तो हमने प्रिन्टिंग प्रेस निकाला है—यह सहूलियत है। सहूलियत होने पर भी १ सालों में हिन्दुस्तान की १५ भाषाओं में, मैं जानता हूँ, ऐसा कोई नया ग्रन्थ निर्माण नहीं हुआ जो ठिरुक्कुरल ग्रन्थ साहब तुलसी रामायण या ज्ञानेश्वरी की बराबरी रख सके। अगर मनुष्य का मन अध्यात्म की दृष्टि से पराङ्मुख हुआ होता तो इन ग्रन्थों की आज इतनी कदर क्यों होती

है ! दूसरी क्यों नहीं खपती ! इसका कारण क्या है ! ग्रन्थों की तादाद में धार्मिक किताबें बिक जाती हैं। आज बाइबिल, कुरान शरीफ धम्मपद ये ग्रन्थ कितने छपते हैं उतनी कोई किताब भारत में खपती नहीं दुनिया में भी नहीं खपती। अतः समझना चाहिए कि अध्यात्म शक्ति जोरदार है। मेरा पत्र-व्यवहार हिन्दुस्तान के हर प्रान्त से चलता है। उसमें कितने ही पत्र ऐसे आध्यात्मिक बातें हैं मार्गदर्शन चाहनेवाले—तीन मास से संवेदनायुक्त त्याग करने की तत्परता दिखानेवाले इस तालीम से ऊबे हुए कॉलेज के विद्यार्थियों के पत्र। भारत की यह आकृति मैं जानता हूँ। मैं जितना भारत को जानता हूँ उतना और कोई नहीं जानता—यह मेरा assessment है फैसला है। भारत में अध्यात्म-शक्ति खूब जोर से जाग रही है।

तुलसी-रामायण की विशेषता

सार यह कि तुलसीदासजी के जमाने की अपेक्षा आज अध्यात्म की ज्यादा जरूरत है। इसलिए तुलसी-रामायण पहले करती थी, उससे ज्यादा काम आज करेगी। पुराने ग्रंथ का थोड़ा परिष्कार करने की जरूरत होती है। मकिलता सामी है तो धोना पड़ता है थोड़ा संशोधन जरूरी होता है। वाल्मीकि-रामायण का भी तुलसीदास ने अनुवाद नहीं किया संशोधन ही किया। दोनों की तुलना करें तो मालूम होगा कि तुलसी-रामायण वाल्मीकि-रामायण का न तर्जुमा है न संक्षेप वह संशोधन ही है और वह हिम्मत के साथ किया है अपने बाप की विरासत समझकर। बाप के मकान में खिड़की नहीं है तो अपनी दृष्टि से उसमें खिड़की बना ली। वाल्मीकि-रामायण में अपनी दृष्टि से तुलसीदासजी ने जहाँ जरूरत मालूम हुई वहाँ संशोधन किया। वैसे हमें भी तुलसी-रामायण का संशोधन करना होगा। उसमें तुलसीदासजी के प्रति आदर कम नहीं होगा। संशोधित तुलसी-रामायण पुराने जमाने से ज्यादा काम करेगी। वह पहले उत्तर हिन्दुस्तान तक सीमित थी अब वह दक्षिण में भी फैलेगी।

जेल में मेरे साथ भारतन् कुमारप्पा थे। वे मेरे पास हिन्दी सीखने के लिए आये। उनकी मातृभाषा तमिल थी। उसे वे भूल गये थे। अंग्रेजी में उनका कारोबार चलता था। मैंने उन्हें हिन्दी सिखाने के लिए तुलसी-रामायण ली। पहले ही व्याख्यान में उनसे कहा कि वाल्मीकि और शेक्सपियर इकट्ठा करेंगे तो बनेगा तुलसीदास। तो वे एकदम चौकन्ना हो गये और कहने लगे: 'एक वाक्य में कुल सार आपने बता दिया कि तुलसी-रामायण क्या असर करता है और लोक-मानस पर उसका इतना प्रभाव क्यों है इसका पता मुझे आज चला।" आज वाल्मीकि का प्रभाव बहुत है। उसकी भाषा अत्यन्त मधुर और सरल है। शेक्सपियर तो महान् कवि हो गया। वह अद्वितीय साहित्यिक था। दोनों तुलसीदास में हैं यह जब मैं कहता हूँ तो इससे बढ़कर तुलसी रामायण का कोई वर्णन नहीं हो सकता। एक जमाने में मैंने कहा था कि तुलसी-महोत्सव का ठेका साहित्यिकों का हो इसे मैं पसन्द नहीं करता। यह उनका ही हक नहीं है उनका भी है। साहित्यिक तुलसी महोत्सव करते हैं या तरह-तरह की कविता करते हैं, आनन्द करते हैं—जैसे कवि-सम्मेलन में होता है। लेकिन मैं कहना चाहता हूँ कि तुलसीदासजी सिर्फ साहित्यिक नहीं थे। वे सिर्फ साहित्यिक होते तो आम जनता को खींचते नहीं और जो हैसियत तुलसी-रामायण को हासिल है, वह न होती।

श्रद्धानन्द की श्रद्धा

एक किस्सा सुनाऊँ। स्वामी श्रद्धानन्दजी ने अपना चरित्र लिखा है। उसका नाम है 'कल्याण मार्ग का पथिक'। स्वामी श्रद्धानन्द आर्य समाज की पद्धति में पले हुए थे। आर्य समाज में बहुत गुणों के साथ साथ अपने आग्रह हैं या भ्रम हैं जो भी कहिये—जैसे सनातनियों में होते हैं कम्युनिस्टों में होते हैं, जैसा सामान्यतया होता है वैसा उनमें भी होता है। स्वामी दयानन्द ने अप्रामाण्य ग्रन्थों की एक सूची बनायी है और म

पढ़नेवाले ग्रन्थों की सूची में उन्होंने तुलसी-रामायण का नाम लिख दिया है। वे बहुत बड़े सुधारक थे और सुधार के ख्याल से ही ग्रन्थों को देखते थे। यानी कभी देखी तो उसमें तुलसी-रामायण का नाम लिख दिया। अब तुलसीदास का नाम बना है, स्वामी दयानन्द भी महान् तुलसीदास भी महान् और आप और हम भी ऐसे महान् कि दो दोनों को हजम करते हैं। एक बेचारगी भी है। हिन्दुस्तान में एक बेचारगी भी है। उस परम्परा में स्वामी श्रद्धानन्द आते हैं। उन्होंने अपनी कहानी लिखी है। उसमें अपने पिता के बारे में एक जगह लिखा है कि पिताजी न्यायाधीश थे। उनके पास चोरों के मुकदमे आते थे। जिन पर चोरी का आक्षेप आता था उनसे वे कहते थे कि तुलसी-रामायण को हाथ में लेकर कहो कि तुमने चोरी की है या नहीं। वह व्यक्ति हाथ में तुलसी-रामायण लेकर कहता था कि "जी हाँ मैंने चोरी की है।" और ऐसे ग्रन्थ का नाम स्वामी दयानन्द ने न पढ़नेवाले ग्रन्थों की सूची में रखा। श्रद्धानन्दजी की राय वैसी नहीं थी।

तुलसी पतितों के प्रतिनिधि

ग्रन्थों में कुछ बात ऐसी होती हैं जिनकी आप अगर न समझते हों। उनमें सुधार की गुंजाइश होती है। लेकिन उनको हम अप्रमाणित न मानें। हम उनका परिष्कार कर सकते हैं उन्हें परिग्रह कर सकते हैं। तुलसी-रामायण में यह खूबी है। महात्मा गांधी की बात अत्यन्त गरीबों के साथ उनका दिल एकरूप हो गया था। वे अपने को दरिद्र-नारायण के प्रतिनिधि मानते थे और वे थे। दरिद्रों की, दुखियों की बात उनके हृदय में उठती थी। उसी तरह से तुलसीदास पतितों के प्रतिनिधि थे सिर्फ दरिद्रों के नहीं। पापियों में शिरोमणि मैं हूँ—इस तरह अपने को वे पतितों के प्रतिनिधि मानते थे। कलियुग का वर्णन उन्होंने किया। "जो अनर्थ कलियुग कराय। दारुण दारुण भेद सहाय। जो कराय कलियुग में, निरख कलियुग

में बनते हैं जिनका आचरण तो कौवे के समान है और वेश है हंस के समान। 'चलत कुपन्थ वेद मग छाँड़े'—वेद के सन्मार्ग को छोड़कर कुपन्थ पर चल रहे हैं कुमार्ग पर चल रहे हैं। 'कपट कलेवर कलिमल भाँड़े'—कपट की मूर्ति हैं, कलेवर कलिमल से भरे हुए हैं। 'बंचक भगत कहाइ राम के'—वे राम के भगत कहलाते हैं—नाटक, मिथ्या। 'किंकर कंचन कोह काम के'—माने कंचन के, कोह के माने क्रोध के और काम के दास हैं। यह सारा वर्णन कलियुग के व्यक्तियों का पापी पामर जीवों का है। और बाद में क्या लिखते हैं 'तिन्ह महँ प्रथम रेख जग मोरी'—ऐसे लोगों में मेरा नाम पहला है। बाकी के नाम पीछे। कलियुग के दम्भियों का वर्णन हम भी करते हैं लेकिन हम कहते हैं 'तुम दोषी तुम दोषी हो'। दूसरे के दोषों का विश्लेषण इस जमाने में जितना होता है उतना पहले नहीं होता था। किसी भी अखबार का पन्ना खोलिये, दूसरे के दोषों को बढ़ाकर, दोष न हों तो दिखाकर, रुचिपूर्वक वर्णन करते हैं। लेकिन तुलसीदास ने जो धर्म की ध्वजा उठानेवाले थे, अपने को पतितों का प्रतिनिधि माना और अपना धिक्कार किया है और इसलिए वे झुक गये। सारे समाज का उत्थान करने के लिए, सब प्रकार के अहंकार को छोड़कर वे झुक गये और ऐसी भाषा लिखी। विद्वत् शिरोमणि' होकर ऐसी भाषा लिखी—'बालमीक'—कौन सहन करेगा संस्कृत जाननेवाला? कहेगा 'वाल्मीकि' लिखना चाहिए। अब लोगों को व्याकरण सिखाना है कि धर्म सिखाना है? जिन शब्दों का लोग उच्चारण भी नहीं कर सकते उनके लिए उन्होंने सरल भाषा लिखी। और वे कहते हैं कि बहुत बड़े ग्रन्थों का प्रमाण लेकर मैं लिख रहा हूँ। 'धरम न अरथ न काम रुचि' धर्म नहीं कहते 'धरम' कहते हैं; अर्थ नहीं कहते 'अरथ' कहते हैं निर्वाण नहीं कहते, 'निरबान' कहते हैं।

पुष्पाक्षर छोड़कर आम समाज समझ सके, वही भाषा लिखी। आश्रम नहीं लिखेंगे 'आसरम' लिखेंगे। इतनी नम्रता थी और ऐसे झुक

गये, समाज को ऊपर उठाने के लिए जैसे माँ बच्चे को उठाने के लिए झुकती है। पतितों के प्रतिनिधि बनकर, उनके हृदय के साथ एकरूप हो गये। उन्होंने कोई दम्भ नहीं किया। अन्तर की भावना लिखी। उन्होंने कहा कि ऊपर-ऊपर से मैं दिखता हूँ लेकिन भगवान् के सामने मैं अपने को दोषी पाता हूँ। यह वृत्ति अन्तर्याम में थोड़ा भी दोष हो, तो उसे बड़ा करके देखने की है। सामान्य पतितों के साथ अत्यन्त एकरूप हो गये। इसीलिए सारा हिन्दुस्तान उनके नाम से गद्‌गद होता है। महात्मा बुद्ध के बाद हिन्दुस्तान में इतना महान् कोई हुआ नहीं। तुलसीदास के समान इतना बड़ा कोई हुआ नहीं—बिलकुल आम लोगों के साथ एकरूप होनेवाला अत्यन्त क्षमाशील परम नम्र अन्दर से ही अपने को नीच-से-नीच माननेवाला अलंकार के तौर पर नहीं पर अपने को पापी समझनेवाला। राम-नाम की महिमा वर्णन करते हैं राम-नाम से पत्थर तर गये यह तर गया वह तर गया। ऐसे उदाहरण अनेक दिये और आखिर में कहा।

नामु राम को कलपतरु कलि कल्यान निवासु।
जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदासु॥

जिस नाम के स्मरण से भांग से ही तुलसी पैदा होता है। रामजी ने अत्यन्त पापी में से भक्त बनाया। इस तरह का वर्णन किया—राम नाम की महिमा वर्णन की—अपने स्वानुभव की।

आम जनता के लिए धर्म-ग्रन्थ

तुलसीदास ने भारत को बचाने का काम किया। पचास राजा महाराजाओं ने प्रयत्न करके भी जितना नहीं बचाया लाख लाख की सेना ने भी जितना नहीं बचाया उतना तुलसीदास के इस ग्रंथ ने बचाया। हमारे सब ग्रंथ संस्कृत में हैं—गीता, रामायण, भागवत, महाभारत। वह प्राकृत में आये और एक धर्म-ग्रंथ आम जनता के लिए दिया। धर्म-ग्रंथ में जितना नीतिशास्त्र वस्तुओं की कथाओं का एक

अंश, तत्त्वज्ञान का अंश, भगवान् की भक्ति का अंश, विधि-निषेध का अंश, इतना सारा सम्मिलित होता है तब धर्म ग्रंथ बनता है। यह केवल भक्तों की गाथा से नहीं होता, केवल तत्त्वज्ञान के भाष्य से नहीं होता। 'ब्रह्मसूत्र' अप्रतिम तत्त्वज्ञान का ग्रंथ है लेकिन वह धर्म ग्रंथ नहीं हो सकता। भाषा और कथा कितनी ही अच्छी हो उनका धर्म-ग्रन्थ नहीं बन सकता। लेकिन इन सबका रसायन बनाकर लोकभोग्य और लोकप्रिय की तरकीब जहाँ हो सकेगी वहाँ धर्म-ग्रंथ होता है। ऐसा धर्म-ग्रन्थ तुलसीदासजी ने दिया। यह नहीं कि हिन्दुस्तान उसके पहले 'अहले किताब' नहीं था पुस्तकवाला नहीं था। हिन्दुस्तान १ हजार साल से अहले किताब' है धर्म-ग्रन्थवाला है। वेद से लेकर धर्म-ग्रंथ लिखे लेकिन आम लोगों की भाषा संस्कृत नहीं रही हिन्दी आयी। तो उनकी भाषा में धर्म-ग्रन्थ नहीं रहा। वह पैदा किया। यह उनकी विशेषता है। उसे जरा इधर-उधर साफ करने की जरूरत है।

संग्रह की दृष्टि

इस तरफ महात्मा गांधी ने जो कि तुलसीदास के परमभक्त थे रामजी के भक्त थे तुलसी-रामायण के भक्त थे ध्यान दिलाया— 'ढोल गँवार शूद्र पशु नारी। ये सब ताड़न के अधिकारी' जैसी उक्तियों की तरफ ध्यान दिलाया। ऐसी बातें हम नहीं मानते हैं। हम भक्ति का भाग लेते हैं—इस तरह का भाग हम नहीं लेते हैं—ऐसा महात्मा गांधी ने कहा। यह ठीक है लेकिन तुलसी रामायण के बारे में सोचते हुए जरा संशय का फायदा तुलसीदास को देना चाहिए। आज न्याय विधान का तत्त्व है 'मुजरिम' को संशय का लाभ देना चाहिए। तुलसीदास महान् थे उन्होंने हमारे कल्याण के लिए किया है तो जिस पर हमारा आक्षेप हो उस विषय में पहले यह सोचना चाहिए कि तुलसीदास को संशय का फायदा मिले। यह वचन कौन कह रहा है? कौन बोल रहा है यह? मंथरा के वचन रावण के वचन कुम्भकर्ण के वचन

क्या रामायण होंगे ! यह तो 'जड़ समुद्र' बोल रहा है। समुद्र ने रामजी को रास्ता नहीं दिया था तो समुद्र के किनारे बैठकर रामजी ने तपस्या की उपवास किये तिस पर भी समुद्र ने रास्ता नहीं दिया तो रामजी ने धनुष उठाया। फिर समुद्र घबराया और घबराकर कहने लगा : 'हम मूरख हैं हम नहीं समझते हैं हमें अक्ल नहीं है। इसलिए 'ढोल गँवार शूद्र पशु नारी। ये सब ताड़न के अधिकारी' कहकर अपनी गिनती समुद्र गँवार में कर रहा है। हम गँवार हैं नालायक हैं ताड़न के अधिकारी हैं हमें मार्ग दिखाइये।" यह तुलसीदासजी की उक्ति नहीं है, वह जड़ जलधि की है। इसलिए तुलसीदास को शक का फायदा देना होगा। ऐसी अनेक उक्तियाँ होंगी उसमें शक का फायदा हम देते हैं, तो तुलसीदास निर्दोष साबित होंगे। तिस पर भी ऐसे वचन मिलते हैं, जिन्हें छोड़ना होगा।

जमाना किसका ?

आप बड़ी शान्ति से सुन रहे हैं। हमारा दिल तुलसीदास की भक्ति से भरा है। हमने तुलसी रामायण का पाठ कई बार किया है। पाठ के लिए नहीं चिन्तन के लिए, मनन के लिए किया है। पचाया भी है। वह चीज हमारे दिल को छूती है और आपने यह मौका हमको दिया है पवित्र पुण्य स्मृति को भावाञ्जलि अर्पण करने का इसलिए हम आपका बड़ा उपकार मानते हैं। तुलसीदासजी ने हिन्दुस्तान के लिए क्या नहीं किया ! हम शब्दों में कह नहीं सकते। जितना एक मनुष्य कर सकता था उतना उन्होंने किया। वह तुलसीदासजी का जमाना था। उस समय अकबर का साम्राज्य था। बहुत उदार राजा था वह। अकबर से बढ़कर चरित्रवान्, धीमान्, प्रजा की चिन्ता करनेवाला राजा मुश्किल से मिलता है। उस महान् राजा के राज्य में तुलसीदास हुए। लेकिन तुलसीदास ने उस वक्त की जनता का जो वर्णन किया है उसमें उन्होंने अत्यन्त दुःख प्रकट किया है समाज सारा गिर रहा है सब तरह

से लोग कुण्ठित हो गये हैं, लोगों का उत्थान नहीं हो रहा है परस्पर *मेल-जोल सहकार नहीं है लोग सुखी नहीं हैं।* इस तरह तुलसीदास ने समाज की परिस्थिति का वर्णन किया है। क्या कारण है कि तुलसीदास को ऐसा दर्शन अकबर जैसे बड़े राजा की प्रजा का हो ! इसीलिए मैं कहता हूँ कि राजा-महाराजा रियासत या सरकार करेगी, तो क्या करेगी ! भौतिक इन्तजाम अच्छा करेगी लेकिन आध्यात्मिक विकास करेगी ! नहीं कर सकती। सद्गुणों को नहीं बढ़ा सकती। जवाहरलालजी की सरकार है। मैं मानता हूँ कि अकबर की कोटि में जवाहरलालजी की गिनती भावी की दुनिया करेगी। वे महान् राज्यकर्ता उत्तम विचारक हैं प्रजा-जीवन के बारे में जिनके हृदय में सौहार्द है ऐसे महान् के हाथ में ३२ लाख से देश की बागडोर है। कितना उत्थान हुआ है देश का ! रामजी का राज्य आदर्श माना जाता है। उसमें प्रजा की हालत कैसी थी। सीताजी रावण के घर से लौटीं तब एक दिव्य हुआ है, तिस पर भी रामजी की प्रजा में सीताजी के बारे में उनके चारित्र्य पर शंका करनेवाली चर्चा होती थी। रामजी की प्रजा में सीताजी के चारित्र्य पर शंका बहुत अजीब बात लगती है। सीता माने परम आदर्श पतिव्रता और पवित्रता का। उससे बढ़कर आदर्श नहीं हो सकता। लेकिन उस पर शंका करने वाले रामजी की प्रजा में थे इसके माने क्या हैं ! तात्पर्य समझने की जरूरत है कि केवल राजा या राजसत्ता जनता का उत्थान नहीं कर सकती है। राजसत्ता शान्ति कर सकती तो गौतम बुद्ध के हाथ में राज्य था उसने क्यों छोड़ा ! क्या वह बेवकूफ था ! आज हम चाहते हैं कि हम इसेम्बर हों जो उठा सो यही सोचता है। लेकिन इसेम्बर होकर क्या करते हैं ! कैदी बन जाते हैं। एक मशीन के पुर्जे बन जाते हैं। आखिर राग-द्वेष में फंसे हो और जनता के उत्थान के लिए क्या किया तो कहते हैं इधर डैम बनाया उधर पुल बनाया। लेकिन लोक-हृदय को स्फूर्ति देने के लिए, लोगों की शुद्धि करने के लिए, उनके उत्थान के लिए क्या काम किया ! क्या लोगों में परस्पर सहयोग हुआ ! कह सकते हैं कि

थोड़ा सुख बढ़ा, थोड़ा आर्थिक सुधार हुआ, लेकिन नैतिक उत्थान नहीं हुआ। राजसत्ता के हाथ से नैतिक उत्थान नामुमकिन है। अकबर जैसे के राज्य में सर्वत्र अच्छी तरह से इन्तजाम होने के बावजूद तुलसीदासजी ने समाज अवस्था का जो वर्णन किया है प्रजा का जो वर्णन किया है वह बतलाता है कि समाज गिरा हुआ था। उससे हमको सबक लेना चाहिए। तुलसीदासजी समाज के लिए मार्गदर्शक थे अकबर नहीं हो सकता था। इसलिए अकबर के जमाने में तुलसीदास हो गये यह गलत लिखा है। बावजूद इसके कि अकबर महान् था—मेरा सलाम है अकबर की स्मृति को—लेकिन जमाना अकबर का नहीं था तुलसीदास का था। आज के इतिहासकार ऐसा नहीं लिखते हैं। १४वीं सदी में कौन महान् थे—विद्यारण्य और उधर नामदेव पंजाब में काम करते थे। लेकिन आज के इतिहासकार राजाओं के नाम लिखते हैं और लिखते हैं कि फलाने राजा हुए, फलाने राजा हुए। यहाँ तक है कि पण्डित नेहरू ने दुनिया का इतिहास लिखा है—बहुत अच्छी तरह से लिखा है—लेकिन उसमें बाबर के नाम पर पाँच-दस पन्ने हैं और तुलसीदास के बारे में दो-चार लाइनों में ही लिखा है। मैं कोई टीका नहीं कर रहा हूँ। यह एक दृष्टि है। ऊपर-ऊपर से हम देखते हैं। दीखता है कि अकबर का जमाना था लेकिन अकबर का असर समाज पर था? समाज पर असर तुलसीदास का था। ऐसे कितने ही राजा होंगे प्रजा उनको भूल गयी है। लेकिन आज भी कबीर, नानक नामदेव का असर लोगों के दिल पर है। पंजाब में मैं गया था तो नानक का नाम सुनता था। कश्मीर में गया था तो वहाँ एक महान् आत्मज्ञानी का नाम मैंने सुना। कश्मीर का वह सर्वश्रेष्ठ नाम मुझे पहले मालूम नहीं था। शैव सम्प्रदाय की एक योगिनी हो गयी। वह नग्न रहती थी। कश्मीर में नग्न रहना मामूली बात नहीं है। वहाँ तो छह-छह महीने बर्फ रहता है। उस स्त्री का नाम था 'लल्ला'। आज भी कश्मीर के हिन्दू और मुसलमान जो हिन्दू धर्म से ही मुसलमान बने हैं वे लल्ला के गाने गाते हैं। वे कहते हैं

कि कश्मीर को दो ही नाम मालूम हैं—एक अस्लम और दूसरा अस्लम। दूसरे राजा का नाम मालूम नहीं। लेकिन उन दिनों इतिहास में राजा के नाम रहते हैं। राजाओं को मालूम था कि हम जिन्दा नहीं रहनेवाले हैं याने हमारे नाम नहीं रहनेवाले हैं। इसलिए इतिहास में अक्षरों से रखवाते हैं।

दिल्ली से ४ मील दूर पर मेवों को बसाने का काम मैं करता था। उस वक्त एक मस्जिद में खड़ा होकर मैं बोल रहा था। यों ही अकबर बादशाह की मिसाल दी। मुसलमानों की सभा थी। मुझे सहज लगा कि जरा पूछूं तो कि अकबर बादशाह को जानते हो? सभा में आये हुए लोगों ने बताया कि अकबर राजा कौन था उन्हें मालूम नहीं। बावजूद इसके कि बादशाह में अकबर और मदिरों में गंगा यहाँ तक आदर है। लेकिन वहाँ के मुसलमान नहीं जानते थे कि अकबर राजा कौन था। वे कबीर को जानते थे। मैंने पूछा कि क्या अकबर का नाम नहीं सुना? तो बोले सुना है अल्ला हो अकबर—अल्ला हो अकबर'। अकबर बादशाह खतम। अरबी भाषा में अकबर का अर्थ होता है 'सबसे बड़ा'। उस सबसे बड़े अल्ला को वे जानते थे लेकिन अकबर बादशाह को वे लोग नहीं जानते थे। हिन्दुस्तान में हिन्दू लोग एक ही राजा को जानते हैं—राजा राम। लोगों को सन्तों की मामावली मालूम है। पंजाब में ८ माह मैं घूमा। वहाँ लोगों के मुँह पर एक ही नाम सुना—गुरु नानक का। मीरा तुलसीदास महावीर, महात्मा बुद्ध ज्ञानदेव नामदेव, पुरन्दर, शंकर, रामानुज—यही है पावन नामावली—यही तारक हैं। ऐसे महान् का नाम लेने के लिए आपने मुझे बुलाया इसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ।

इन्दौर   —गोस्वामी तुलसीदास-जयन्ती के अवसर पर
१ - ८ - ६

५

गलत मूल्यांकन

दोयम दर्जे की सेवाएँ

हम मूल्य-परिवर्तन चाहते हैं। मूल्य-परिवर्तन की न सोचकर आज समाज में जो मूल्य कायम माने गये हैं उनके आधार पर जो सेवा होती है वह समाज की सेवा तो जरूर है, लेकिन हम उसे गौण मानते हैं। वैसी सेवाओं से समाज चलता है वैसी सेवाएँ न हों तो समाज का विध्वंस हो जायगा लेकिन वैसी सेवाओं को हम अपने विचार के लिहाज से दोयम दर्जे की मानते हैं।

हम मूल्य बदलना चाहते हैं

हम कुछ मूल्यों को बदलना चाहते हैं। मिसाल के तौर पर, चोरी नहीं होनी चाहिए। क्या हम इस मूल्य को नहीं मानते? यह मूल्य हमको मान्य है लेकिन चोर को दण्ड कैसे दिया जाय? दण्ड से चोर का सुधार होना चाहिए न कि उसे सजा मिले यह हम कहना चाहेंगे। लेकिन विशेष परिस्थिति में चोरी होगी ऐसा हम नहीं कहेंगे। हम कहेंगे कि चोरी गलत है।

चोरी गलत, संग्रह भी गलत

आज हम एक आयुर्वेद के बगीचे में गये थे। वहाँ के पौधे वैद्यजी ने मुझे दिखाये। एक-एक पौधा बड़ी वात्सल्यवृत्ति से लगाया गया था। उनकी बात सुनकर और पौधा देखकर आनन्द होता था। उनमें एक पौधा विशेष किस्म का था। वह पौधा दिखाकर उन्होंने कहा कि उसके

अपहरण का डर रहता है। उन्होंने चोरी शब्द न इस्तेमाल करके अपहरण शब्द का प्रयोग किया। कम्युनिस्टों ने भी एक शब्द बनाया है : Expropriation of the expropriator यानी अपहरणकर्ता का अपहरण करना वाजब है ऐसा उनका कहना है। उसमें चोरी शब्द कहीं भी आपको नजर नहीं आयेगा। लेकिन हकीकत में चीज वही होगी। हम यह नहीं मानते। हम चोरी को गलत मानते हैं। उसके साथ संग्रह को भी गलत मानते हैं। वैसे तो हमारे शास्त्रों में भी कहा है कि संग्रह नहीं करना चाहिए। हम जो प्रार्थना करते हैं उसमें भी असंग्रह व्रत आता है। पर जिस प्रकार चोरी को गुनाह मानकर उसके लिए पुलिस कानून जेल सजा वगैरह की योजना की गयी है वैसी हमने संग्रह करनेवालों के लिए कोई योजना बनायी है क्या ? संग्रह के लिए भी इस प्रकार योजना बनायी जा सकती है।

मनुस्मृति में एक श्लोक है। उसमें मनु ने कहा है कि इससे ज्यादा संग्रह न किया जाय। एक हद से ज्यादा संग्रह करने का गृहस्थ को अधिकार नहीं है। वैसे तो संग्रह का अधिकार केवल गृहस्थ को ही है, ब्रह्मचारी और संन्यासी को संग्रह का अधिकार ही नहीं है; लेकिन गृहस्थ के संग्रह पर भी मर्यादा लगायी गयी है। उसका एक अर्थ जो लगाया जाता है उसके मुताबिक एक आदमी अपने लिए १२ दिन तक पर्याप्त हो उससे ज्यादा का संग्रह नहीं कर सकता। उसके अलग-अलग अर्थ भी किये जाते हैं। लेकिन उन सबमें सबसे 'लिबरल' जो अर्थ है उसके मुताबिक एक आदमी अपने लिए १ वर्ष तक पर्याप्त हो उससे ज्यादा का संग्रह नहीं कर सकता। अब यह शब्द 'टेकनिकल' है और उसका अर्थ डिक्शनरी में सहज नहीं मिलता। लेकिन सबसे जो 'लिबरल' अर्थ है वही लिया जाय तो उसके मुताबिक भी १ वर्ष से ज्यादा का संग्रह नहीं किया जा सकता। जैसे मेरे घर में ५ आदमी हैं और हर आदमी के लिए रोजाना दो रुपये की आवश्यकता है तो रोज के दस रुपये हुए। महीने के ३) साल के ३६) और १ वर्ष के १ ८)

हुए। इससे ज्यादा संग्रह नहीं कर सकते। यह आज भी कहा जाय तो कैसा विलक्षण लगेगा! संग्रह के बारे में जिनका सबसे ज्यादा तीव्र मत है और जो लेवलिंग करने के सबसे ज्यादा प्रेमी हैं वे कम्युनिस्ट भी तो यह नहीं मानेंगे। उनसे पूछा जाय, तो वे भी इससे ज्यादा ही मर्यादा करेंगे। पर मनु ने ऐसा कहा। अगर संतों ने या ऋषि-मुनियों ने यह कहा होता तो उसको संतों का या ऋषियों का उपदेश मान लेते और जँचता तो मानते नहीं तो नहीं। लेकिन मनु कोई संत नहीं था। मनु तो उस जमाने का Law-Giver था। अर्थात् यह सामाजिक कानून था। मतलब यह कि उससे ज्यादा संग्रह हो तो सरकार उसको जप्त कर सकती है। या फिर कभी-कभी डाकू भी लूट लेते हैं। मान लीजिये, किसीके पास ज्यादा संग्रह है और डाकू ने उसे लूट लिया और गरीबों में बाँट दिया।

ऐसे डाकू होते हैं। अभी चम्बल-क्षेत्र से मैं आया हूँ। वहाँ जो डाकू हुए उनमें ऐसे भी हुए, जिन्होंने गरीबों को नहीं लूटा, स्त्रियों पर बलात्कार नहीं किया, धनवानों से लूटकर गरीबों में बाँटा या मन्दिर बनवाया, धर्मशाला बनवायी। एक गाँव में एक भाई बताते थे कि देखो यह मन्दिर मानसिंह डाकू ने बनवाया था। ऐसे लोगों की भी जनता में एक इज्जत होती है, क्योंकि जनता के दिल में एक हद से ज्यादा संग्रह के विरुद्ध एक अभिप्राय होता है, लेकिन वह अन्दर-अन्दर होता है। हम चाहते हैं कि एक ऐसा जागरूक लोकमत होना चाहिए कि इससे ज्यादा संग्रह पाप है। आजकल सीलिंग (Ceiling) की बात चलती है। उसका अर्थ यह है कि एक नया मूल्य समाज के सामने आया है।

भूदान से नये मूल्यों की स्थापना

मैं बार बार कहता हूँ कि भूदान ने एक नये मूल्य की स्थापना की है। आज से ८ साल पहले किसी [illegible] एकड़ के मालिक से पूछते

कि आपके पास कितनी जमीन है, तो वह १ की जगह ५ एकड़ जमीन बताता और उसमें अपनी इज्जत समझता। लेकिन आज स्थिति यह है कि १ एकड़ का मालिक ९५ एकड़ ही बतायेगा। ज्यादा जमीन रखना वह गुनाह मानने लगा है। इस पर से स्पष्ट है कि मूल्य बदल गया है। अब ज्यादा जमीन रखना भूषण नहीं माना जाता। उसमें credit नहीं, discredit ही है ऐसा माना जाता है। ऐसा एक मूल्य-परिवर्तन समाज में हुआ है। चोरी नहीं करनी चाहिए, यह एकांगी मूल्य आज तक चलता था। लेकिन अब ऐसे मूल्य के दोनों पहलू सामने आने चाहिए।

एकांगी मूल्य नहीं, पूर्ण नीति

दूसरी मिसाल। पत्नी पति के प्रति वफादार रहे यह एक मूल्य पहले से समाज में मान्य है। एक ही पति होना चाहिए यह माना गया है। द्रौपदी के पाँच पति थे, इस एक उदाहरण को छोड़कर एक ही पति होना चाहिए, दो पति नहीं हो सकते यह मान्यता रही है। लेकिन पति की दो पत्नियाँ हो सकती हैं। हाँ राम की भी एक ही पत्नी थी और वह अच्छी बात मानी गयी। लेकिन दशरथ की तीन पत्नियाँ थीं। वह बहुत बेजा बात नहीं मानी गयी। कहनेवाले जरूर कहते हैं कि दशरथ की तीन पत्नियाँ थीं इसी कारण यह सब हुआ, ऐसा रामायण में दिखाया गया है। लेकिन आज बहुपत्नीत्व को ठीक नहीं मानते। सरकारी नौकरों के लिए एक ही पत्नी होना जरूरी माना गया है। मुसलमानों के लिए अलबत्ता ऐसा कानून है कि एक आदमी के चार से ज्यादा पत्नियाँ नहीं होनी चाहिए। लेकिन एक पत्नी के चार से ज्यादा पति नहीं होने चाहिए ऐसा नहीं कहा जाता। एक ही पति होना चाहिए यह मूल्य का एक पहलू है। उसका दूसरा पहलू अभी लागू नहीं हुआ है। समाज में उसके बारे में अभी तक ख्याल नहीं है। इसके माने है कि पुराने जमाने का एकांगी मूल्य है हमें उसका दूसरा पहलू सामने लाकर Whole ethic समाज में लाना है। यह हमारे मूल्य-परिवर्तन का एक अंग है।

किसी भी स्थिति में मनुष्य-हनन नहीं किया जा सकता

दूसरा काम हमें यह करना है कि कुछ अधर्म दुर्गुण या पापों को हमने समाज-रक्षा के नाम से समाज-मान्य किया है, उनको हटाना है। यह हमारे देश में और यूरोप में भी है। एक शब्द है War Babies यानी युद्ध-संतान। युद्ध के समय में लोगों को अपने परिवारों से अलग, बरसों तक दूर रहना पड़ता है। वह राष्ट्र के रक्षण के लिए सेवा करता है। उसको जैसे शराब दी जाती है उसी प्रकार लड़कियाँ भी व्यभिचार के लिए दी जाती हैं। उन लड़कियों की सन्तान होती हैं। समाज ऐसी सन्तानों को दया की दृष्टि से देखता है। तो, एक तो राष्ट्र-संरक्षण के नाम से हमने हत्या को मान्य रखा। किसी भी धर्म की दृष्टि से हिंसा पाप है फिर वह धर्म ईसा का हो मूसा का हो बौद्ध हो जैन हो या हिन्दू हो। हिंसा को पाप माना गया है लेकिन राष्ट्र-बचाव के लिए हिंसा कर सकते हैं ऐसा माना गया। उसे क्षात्रधर्म माना गया और उसका गौरव किया गया। आज भी कोई क्षात्रधर्म को अमान्य करने को तैयार नहीं है। जहाँ राष्ट्र के बचाव की बात आयी वहाँ हिंसा का धर्म माना। यानी धर्म की दृष्टि से जो अधर्म है उसको भी राष्ट्र-रक्षण के लिए धर्म माना। अब यह बदलना चाहिए। हम इस मूल्य को स्थापित करना चाहते हैं कि किसी भी स्थिति में मनुष्य हनन नहीं किया जा सकता। यों तो यह कोई नयी बात नहीं है। यह तो बुद्ध ने भी कहा है और ईसा ने भी कहा है। हम कोई नयी बात नहीं कहते हैं। लेकिन हम मूल्य को हम समाज मान्य बनाना चाहते हैं।

समाज रक्षा के लिए विपरीत मूल्य

एक तीसरी मिसाल लीजिये। पुलिस Approver बनाती है। दस-बारह आदमियों ने मिलकर डाका डाला, खून किया। उनमें से किसी एक को पुलिस Approver बनाती है। उससे पुलिस कहती है कि अगर तुम इनका भंडाफोड़ करोगे तो तुमको माफी मिलेगी। या आदमी

भंडाफोड़ करता है, उसको माफ़ी मिलती है और दूसरों को गुनहगार मानकर सज़ा दी जाती है। अब बाक़ी लोग और यह Approver दोनों समाज के गुनहगार थे, डाका और खून में शरीक थे लेकिन एक को सब गुनाह माफ़ और दूसरे जो उतने ही गुनहगार थे उनको सज़ा! जो Approver होता है वह दो गुनाह करता है। एक तो यह कि उसने अपने सब साथियों के साथ डाका डाला। दूसरे, उसने अपने साथियों के साथ जो प्रतिज्ञा की थी कि हम साथ रहेंगे और एक-दूसरे की बात किसीको नहीं बतायेंगे वह प्रतिज्ञा उसने तोड़ी और उनका भंडाफोड़ किया। उसने वचन-भंग का पाप किया। दूसरे जितने गुनहगार थे उतना ही गुनहगार वह भी था उसके अलावा उसने वचन-भंग का एक पाप और किया। फिर भी दूसरों को सज़ा और उसके सारे गुनाह माफ़। लेकिन यह ग़लत है ऐसा किसीको लगता ही नहीं है। क्योंकि माना गया कि वह अगर जानकारी देता है भंडाफोड़ करता है तो उससे सारी टोली पकड़ी जाती है और यह राष्ट्र के हित में है इसलिए उसके गुनाह माफ़ किये जायें। यह है अधर्म और हम मानते हैं धर्म, क्योंकि हम मानते हैं कि यह समाज-रक्षा के लिए है। यह विपरीत मूल्य है। उसको हम बदलना चाहते हैं।

दाइफल की महिमा पर प्रहार

समाज इस प्रकार अपनी Established Values को नहीं तोड़ने देगा। डाकुओं के बारे में मैंने जो कुछ किया उसकी अनुकूल और प्रतिकूल प्रतिक्रियाएँ हुईं। प्रतिकूल प्रतिक्रिया इसलिए कि राइफल की जो महिमा बनी थी वह हमने तोड़ी, उस पर प्रहार किया। "राइफल पकड़ने वाले डाकू और पुलिस को एक Catagory में रख दिया और राइफल पकड़नेवाले को फिर वह कोई हो आपने कायर कहा।" मैंने कहा था: "मुझे गुस्सा आता है तो मैं क्या करता हूँ? ज़ोर से बोलता हूँ गुस्सा व्यक्त करता हूँ और बहुत हुआ तो गाली बकता हूँ। दूसरा आदमी

जिसके हाथ में लाठी है गुस्सा आया तो क्या करेगा ? वह लाठी से सामनेवाले का सर फोड़ेगा। अब एक तीसरा आदमी है जिसके पास राइफल है उसको गुस्सा आ गया तो वह क्या करेगा ? वह कत्ल करेगा। वह कत्ल किस चीज का परिणाम है ? यह दोष किसका हुआ ? मनुष्य का ? उसके गुस्से का या राइफल का ? यह दोष राइफल का हुआ। उन्होंने ग्रामरक्षक दल बनाया और उसके हाथ में राइफल दी। अब इनमें से किसीको गुस्सा आ गया तो ? तो गोली चलेगी और कत्ल हो जायेगा। उसके अलावा उन्होंने Informer को राइफल दी। Informer उनको डाकुओं की जानकारी देता है। जानकारी देता है, तो उसे डर भी रहता है इसलिए उसको भी राइफल दे दी। तो चार जमातें राइफलवाली हुई —पुलिस डाकू, मुखबिर और ग्राम रक्षक दल। बाकी लोग बेचारे तंग आ गये। इन चारों में से किसीको भी गुस्सा आ गया कि उन बेचारों की मुसीबत। मैंने कहा कि इससे डर ही डर बढ़ता है निर्भयता नहीं आती। यह कोई अच्छा लक्षण नहीं है। उस सम्बन्ध में उनका कहना शायद यह है कि आप ऐसा करते हैं तो उससे पुलिस का Moral टूटता है। राष्ट्रपति ने तो मेरे काम के बारे में अभिनन्दन दे दिया। पर दूसरों ने कहा कि बाबा का काम यों तो अच्छा है लेकिन उससे पुलिस का Moral टूटता है। और जो राइफल की महिमा है वह भी टूटती है। और समाज में आज जो Established Values हैं उनको धक्का पहुँचता है। हम इन गलत मूल्यों को जमकर तोड़ना चाहते हैं। यह हमारे मूल्य परिवर्तन का दूसरा प्रकार है।

गुणों का बँटवारा भयंकर

तीसरे, आज व्यक्ति-धर्म और समाज-धर्म में फरक किया जाता है। व्यक्ति के लिए जो गुण ठीक वह समाज के लिए अठीक माना जाता है। यह जो गुणों का बँटवारा किया जाता है वह भयंकर है।

सत्य अपरिवर्तनीय मूल्य

फिर उसमें भी कुछ प्रेफेरेन्स किये जाते हैं। एक अणुव्रत-आन्दोलन चल रहा है। अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य असंग्रह ये जो पाँच व्रत हैं उनका एक हद तक हम पालन करेंगे। ऐसी प्रतिज्ञा की गयी तो अणुव्रत का पालन हुआ। खान की चीजों में मिलावट नहीं करेंगे या दवा में मिलावट नहीं करेंगे ऐसा अणुव्रत लिया। यानी खाने की चीज में या दवा में मिलावट नहीं करेंगे लेकिन और चीजों में मिलावट करेंगे। माना कि आदमी ने अणुव्रत द्वारा एक मर्यादा मान ली तो वह कदम-ब-कदम अच्छाई की तरफ आगे बढ़ सकता है। और व्रतों के बारे में तो वह समझ में आ सकता है लेकिन सत्य के बारे में कहा जाय कि मैं सत्य का अणुव्रत पालन करूँगा—सत्य एक हद तक बोलूँगा—तो वह समझ में नहीं आता। सत्य तो आपकी बुनियाद है। वह आपका Right Angle है। उसमें भी थोड़ा फरक मान लिया जाय, ८ अंश का कोण हो या ८५ अंश का कोण हो तो भी उसको Right Angle मानेंगे ऐसा कहा तो आपका कुल-का कुल व्यवहार टूट जायगा। हाँ गलती से असत्य का व्यवहार हो तो वह माफ किया जा सकता है। बाकी के नियमों में न्यूनाधिक पालन हो सकता है लेकिन जहाँ तक सत्य का ताल्लुक है उसको Absolute V lue मानकर ही उसका आचरण करना चाहिए। उसके बारे में निरपेक्ष नीति मानकर ही चलना होगा। सत्य का थोड़ा पालन और थोड़ा नहीं, यह कोई मानी नहीं रखता। किसी मनुष्य के बारे में कहा जाय कि वह आधा जिन्दा है और आधा मरा हुआ है तो क्या समझा जाय? या तो कहिये कि वह मरा हुआ है या फिर जिन्दा है। आधा मरा हुआ या आधा जिन्दा के कोई मानी ही नहीं हैं। सत्य पूर्ण वस्तु है। अखण्ड ध्येय है इसलिए वह आठ आना या बारह आना सत्य बोलेगा ऐसा नहीं है वह सत्य बोलेगा यानी पूर्ण सत्य बोलेगा। सत्य पूर्ण वस्तु है अपरिवर्तनीय मूल्य है उसकी स्थापना हमें करनी है। यह आज स्थापित नहीं है। आज के

अभाव में कुछ ऐसी बातें होती हैं जो कि सत्य नहीं हैं। पर वह असत्य भी नहीं। जैसे पुराने Astronomers अपने ग्रन्थों में कहते थे कि पृथ्वी स्थिर है और सूर्य उसके इर्द-गिर्द चक्कर काटता है। हकीकत में यह बात गलत थी लेकिन वह नैतिक असत्य नहीं है। मैं एक चीज नहीं जानता हूँ और इसीके कारण कुछ गलत या मिथ्या बोलता हूँ तो वह नैतिक असत्य नहीं है। वह ज्ञान के अभाव में है। जैसे-जैसे विज्ञान फैलेगा जैसे-जैसे ज्ञान बढ़ेगा और सत्य धीरे-धीरे प्रकाशित होगा। जानकारी के अभाव में कही गयी गलत बात नैतिक असत्य नहीं है। लेकिन जो कहता है कि सत्य का एक हद तक पालन करूँगा वह गलत है नैतिक असत्य है। सत्य हमेशा पूर्ण होता है और उसका एक गौण और एक प्रधान रूप नहीं होता। उसका तो एक ही रूप होता है।

असत्य एक बुनियादी पाप

हमने कुछ घटनाओं को पाप माना और उन पापों को असत्य से बड़ा पाप माना ज्यादा महत्त्व दिया है। जैसे किसीने व्यभिचार किया। वह उसको छिपाने की कोशिश करता है क्योंकि हमने व्यभिचार को छिपाने के पाप से बहुत बड़ा पाप माना है। इसलिए वह उसे छिपाता है। लेकिन मानो किसीने व्यभिचार किया और छिपाया नहीं और कह दिया कि मुझसे ऐसा-ऐसा हो गया तो इससे उस दोष की मात्रा कुछ कम हो गयी। लेकिन समाज ने व्यभिचार को असत्य से भी बड़ा मान लिया है इसलिए वह उसको बिलकुल माफ नहीं करता। लेकिन अगर वह छिप सकता तो उसकी इज्जत को उतनी हानि न पहुँचती। तो हमें यह स्थापित करना है कि असत्य एक बुनियादी पाप है। व्यभिचार को छिपाना व्यभिचार से बढ़कर पाप है ऐसा होना चाहिए। लेकिन हमने मूल्यों के गलत दर्जे बनाये हैं और उनमें दूसरे मूल्यों को सत्य से बढ़कर ज्यादा महत्त्व दे दिया है। उसके कारण पाप छिपते हैं। मुझे कोई बीमारी हुई तो क्या मैं उसे छिपाऊँगा? पेट दुखता है, क्योंकि

बिमारी रख लिया था। उसको जाहिर कर देने के बजाय मैं उसको छिपाता हूँ तो नुकसान उठाता हूँ। सबको मालूम पड़ने पर आकर ये तो कहना ही होगा। कहूँगा तो ही इलाज होगा। यह जाहिर बात है कि बीमारी निसर्ग के कुछ नियमों को तोड़ने से ही आयी होगी। मनुष्य अपने रोग को जाहिर कर देता है, तो समाज उससे घृणा नहीं करता दया की नजर से देखता है और उसका इलाज भी होता है। समाज की हमदर्दी होती है इसलिए रोग प्रकट किया जाता है। लेकिन जिन रोगों के बारे में घृणा होती है उनको छिपाने की कोशिश की जाती है जैसे कि leprosy—कुष्ठ रोग। कई लोग उसको आरंभ में छिपाते हैं क्योंकि समाज में उसके प्रति घृणा है। समाज उसका बहिष्कार करेगा इसका उसे डर रहता है। लेकिन जब यह रोग बहुत बढ़ जाता है तब जाकर प्रकट करते हैं। आरंभ में बता दिया जाता तो उसका फौरन इलाज हो सकता था और वह शायद अच्छा भी हो सकता था। साधारण रोगों के बारे में घृणा नहीं होती है इसलिए उनको प्रकट किया जाता है। उसी प्रकार कुछ पापों के बारे में भी समाज में बहुत घृणा होती है और समाज उसको माफ नहीं करता इसलिए उनको छिपाने की वृत्ति है और इस प्रकार असत्य का आचरण होता है। आज समाज में पापों का जो अंकन हुआ है वह गलत हुआ है। अगर यह स्थापित हो जाय कि सबसे बड़ा दुर्गुण असत्य है तो समाज में पाप को छिपाने की प्रवृत्ति घटेगी और जैसे रोग प्रकट किये जाते हैं वैसे पाप भी जाहिर किये जायेंगे और उनका इलाज भी हो सकेगा। तो हमें इस मामले में भी मूल्य-परिवर्तन करना है।

इन्दौर —पंजाब कार्यकर्ता-शिविर में
९-८-'६

६

शब्दों का सत्य

अन्तरात्मा बहिरात्मा में शब्द-रूप ध्वनिरूप होती है

जब कोई कवि जन-हृदय के साथ घुल-मिल जाता है तो वह लोगों के हृदय में छिपी हुई भावना को बाहर लाता है। जो भावनाएं लोगों के मन में गुप्त हैं सुप्त हैं छिपी हैं उनको बाहर लाने ध्वनित करने पर उन बातों में लोगों को अपने अन्तर्भावों का दर्शन होता है आत्म-दर्शन का आनन्द होता है। मनुष्य की आत्मा भावगत होती है। गीता में शब्द आता है आत्मभावस्थः। भगवान् भावस्थ हैं, जो मनुष्य का अन्तर्भाव है जिसके अन्दर आत्मा ज्योतिरूप में जल रही है प्रकाश दे रही है। मनुष्य जो मामूली चीज बोलता है हँसी विनोद ठेकमठ की तरह-तरह की बात, झगड़े गालियाँ विनोद आमोद-प्रमोद करता है आनन्द और भोग-विलास की बात करता है। उनमें उसकी आत्मा प्रकट नहीं होती। मनुष्य का ऊपर का हिस्सा प्रतिबिम्बित होता है। लेकिन जहाँ अन्तर्भाव वाणी में प्रकट हुआ जैसे कबीर तुलसीदास नानक, टैगोर, चैतन्य आदि की वाणी में हुआ उस तरह लोक-हृदय की आत्म-ध्वनि बाहर आती है तो उनमें लोगों को आत्म साक्षात्कार का अनुभव होता है। आत्म-भाव का दर्शन होता है। जो भाव उनके हृदय में थे, लेकिन व्यक्त नहीं कर सकते थे, वे व्यक्त हो गये। अन्तरात्मा बहिरात्मा में शब्दरूप लेकर ध्वनिरूप में सामने खड़ी हो गयी।

हम पैदल पैदल यात्रा करते ही रहते हैं। तब हमें कभी-कभी तुलसीदासजी के गीत याद आते हैं। ऊपर घने बादल हों मूसलाधार घोर वर्षा हो रही हो ऐसे समय पर हमें तुलसीदासजी के गीतों की याद आती

है। 'मन्जी मत न पावे पे मुसाफिर मन्जी मत न पावे' और सामने काले-काले भयानक बादल दीखते हैं जरूर, लेकिन 'काले बादल हिम्मत से न डरें'—ये दो शब्द सुनकर कितना उत्साह भर जाता है। इसकी वजह यही है कि यह शब्द अन्तरात्मा को काम कर देता है और तब वह लोकमानस में प्रवेश करता है।

भूदान अन्तरात्मा में भरी करुणा बाहर लाता है

उनकी मिसाल देकर मैं कहना चाहता हूँ कि भूदान-आन्दोलन में जो अन्तस्तत्त्व है जिसे एक *भिखमंगा* कार्यक्रम समझकर पहले से आज तक यह लोग वर्णन करने में अन्यता महसूस करते हैं वह अन्तस्तत्त्व और उसका कार्यक्रम प्रतिभावान् कवियों को उत्साह देता है। कई कवियों को सर्वोदय के कार्यक्रम ने इस तरह उत्साहित किया है। भारत में ऐसी रुचि दूसरे किसी कार्यक्रम के बारे में लोगों को हुई हो ऐसा मैंने नहीं देखा। नौ साल से मैं घूम रहा हूँ, लेकिन ऐसा अनुभव मुझे नहीं आया। *हिन्दुस्तान के लोग इसे भिखमंगा कार्यक्रम नहीं समझते* हैं। वे समझते हैं कि हमारी अन्तरात्मा में जो करुणा भरी है उसे बाहर लाने का यह कार्यक्रम है।

जिस भूमि से शब्द निकला उस भूमि से हृदय जुड़ा रहे

जो चीज जिस भूमि से निकली है उसे समझने के लिए उस भूमि से हृदय जुड़ा रहना चाहिए। यह शब्द किस हवा से किस भूमि से निकला है उसे समझना चाहिए। मुझे कई भाषाओं का अभ्यास है हिन्दुस्तान की और बाहर की भाषाओं का भी। लेकिन दस हजार साल पहले की भाषाओं में सिवा संस्कृत के और कोई दूसरी भाषा हो तो मैं नहीं जानता। इतनी पुरानी दूसरी कोई भाषा नहीं है। संस्कृत का प्राचीन-तम ग्रन्थ ऋग्वेद है। उसके पहले श्लोक में जो मन्त्र है उसमें जो शब्द हैं वे वैसे के वैसे आज भी हिन्दी मराठी बंगला और गुजराती में इस्तेमाल किये जाते हैं। *पहला ही मन्त्र है*—'अग्निमीळे पुरोहितम्

यज्ञस्य देवम् ऋत्विजं होतारं रत्नधातमम्। उसमें पहला ही शब्द है—अग्नि। यह इन सब भाषाओं में चलता है। अग्नि पुरोहित देव यज्ञ ये शब्द ज्यों के त्यों इन भाषाओं में चलते हैं। ऐसी कोई भाषा नहीं है जिसमें ग्रीक और लैटिन के शब्द ज्यों के त्यों इस्तेमाल किये जाते हों। लेकिन हमारी भाषा में होते हैं। करीब पचास प्रतिशत शब्द वेद के वैसे चलते हैं।

भारतीय विचार-क्रान्ति की प्रक्रिया

इसका और कोई कारण नहीं यही है कि हिन्दुस्तान में जो विचार क्रान्तियाँ हुईं उनकी अपनी एक स्वतन्त्र प्रक्रिया थी। वह यह कि पुराना शब्द तो कायम रखें उसमें अर्थ नये भर दें याने नये-नये अर्थों का उस पर कलम चढ़ाते जायें। पुराने शब्द की ताकत और नये अर्थ की मधुरता दोनों मिलकर एक नया ही विचार हिन्दुस्तान को मिलता गया। शब्द पुराने कायम रहते गये और नये-नये अर्थों की प्रेरणा जन समाज को मिलती गयी। यह अहिंसक प्रक्रिया थी और इसी प्रक्रिया से हिन्दुस्तान आगे बढ़ता रहा। यह बहुत समझने की बात है कि हिन्दुस्तान की भूमि में क्या चीज पड़ी है, जिसके आधार से गांधीजी जैसे पुरुष पैदा हुए और इसके आगे भी अनेक पैदा होंगे। यहाँ की जमीन में जो ताकत पड़ी है उसे समझने की जरूरत है।

दुनिया के कुछ देशों के लोगों को अपना-अपना अभिमान होता है। लेकिन हिन्दुस्तान के लोग भारत के लिए क्या बोलते हैं यह ध्यान देने लायक बात है। 'दुर्लभं भारते जन्म'। वैसे इंग्लैण्ड जापान और रूस में भी लोग बोलेंगे कि इंग्लैण्ड-जापान-रूस में जन्म लेना बड़ी धन्यता की बात है। लेकिन हिन्दुस्तान के लोग आगे क्या बोलते हैं! 'मानुषी तत्र दुर्लभम्' याने मनुष्य का जन्म लेना बहुत ही दुर्लभ बात है। मतलब यह कि हिन्दुस्तान में कीड़े-मकोड़े का जन्म मिला तो भी हम धन्य हैं और मनुष्य का जन्म मिला तो ज्यादा धन्य हैं। इसके माने यह हैं कि

इस भूमि को असंख्य सत्पुरुषों की चरण-रज का स्पर्श हुआ है। उससे पाने उस परम-स्पर्श से यहाँ के जीव-जन्तु भी धन्य हैं।

इसलिए यहाँ विचार की एक प्रक्रिया थी। इस प्रक्रिया को जो नहीं समझते वे यहाँ से निकले हुए शब्द का अर्थ भी नहीं समझते और उसके मूल अर्थ में जाकर उसकी गहराई समझते नहीं हैं। इस कारण यहाँ के शब्दों को लाञ्छित करते हैं।

रण छोड़कर क्यों भाग रहे हो ?

एक भाई बोल उठे कि "हम संन्यास वगैरह कुछ नहीं मानते हैं।" मैंने कहा : "फिर क्या मानते हो ? भोग मानते हो ? हिन्दुस्तान का सबसे श्रेष्ठ विचार संन्यास है उसका गौरव गीता और धम्म गा रहे हैं। ऐसा कीमती शब्द है।" लेकिन क्योंकि कुछ लोगों ने उसका बुरा उपयोग किया इसलिए आप उसे बुरे लोगों के हाथ में सौंप देंगे ? इसका मतलब यह है कि आप रण छोड़कर भाग गये और शस्त्र भी छोड़कर भाग गये। यह शस्त्र आपका है। संन्यास उनका शस्त्र नहीं है जिन्होंने इसका गलत उपयोग किया और संन्यास का जामा पहनकर दुनिया को ठगा। आपने यह शब्द उनके हाथ में देकर भागना शुरू किया तो संन्यास शब्द ही लाञ्छित किया। इसके माने तो यह हुए कि आपको जो सबसे मजबूत तोप थी उसको छोड़कर आप भाग गये। सिर्फ रण छोड़कर नहीं भागे बल्कि, शस्त्र अस्त्र सब छोड़कर भाग गये और शत्रु के हाथ में शस्त्र सौंप दिये।

शब्द का समझ लीजिये

एक कहता है : "हम दया करुणा नहीं मानते।" "दया के माने भी समझते हो ?" तो बोलते हैं "हाँ रिश्वत और गर्मी।" मैंने कहा : 'कहाँ करुणा और कहाँ यह गर्मी और रिश्वत। करुणा का अर्थ यह है कि वहाँ करने की प्रेरणा है। उस शब्द की निन्दा करने के पहले जरा समझ लीजिये। इस तरह हमारे यहाँ जो अत्यन्त पवित्र शब्द हैं उनकी निन्दा

पश्चिम के शब्द यहाँ लाकर करते हो लेकिन पश्चिम के विचार पश्चिम के शब्दों पर आधार रखते हैं। यहाँ के शब्द यहाँ के विचार पर आधार रखते हैं। मैं कहना चाहता हूँ कि करुणा शब्द का तर्जुमा करनेवाला शब्द दुनिया की किसी भाषा में नहीं है। यह यहाँ का विचार है। मर्सी और काइण्डनेस इन शब्दों में भी वह अर्थ नहीं आयेगा। यह इस भूमि का शब्द है और इस भूमि के शब्द के साथ बड़ी भावना जुड़ी है निन्दा नहीं करनी चाहिए। दूसरे कौन से शब्द लाओगे जिनके आधार पर यहाँ की जनता को खड़ी कर सकते हो?

दान यानी विभाजन

इसी तरह हमने 'दान' कहा तो उसे भिखमंगा कार्यक्रम कहना शुरू किया। 'यज्ञस्तपस्तथा दानम्'। यज्ञ दान तप इस तरह भगवद्गीता गर्जना कर रही है। दान का अर्थ सिर्फ 'देना' नहीं है। देना तो एक अर्थ हुआ। दा का अर्थ 'विभाग करना' होता है। दूसरा अर्थ विभाजन भी होता है। 'दानं संविभागः' शंकराचार्य ने कहा है। दान यानी सम्यक् रूप से विभाजन। दा धातु का अर्थ देना भी होता है और विभाजन भी होता है। देने के जरिये विभाजन करने के जरिये भी और कानून के जरिये भी विभाजन हो सकता है। लेकिन देने की प्रक्रिया के जरिये विभाजन इतना कुछ का कुछ अर्थ दान शब्द में प्रकट होता है। यह अर्थ केवल शंकराचार्य ने नये सिरे से लगाया ऐसा नहीं है। प्राचीनों ने भी किया है। शंकराचार्य भी प्राचीन ही हैं। तेरह सौ साल पहले हो गये पर उनके भी पहले बारह सौ साल पहले गौतम बुद्ध हो गये। उनकी भाषा में दान की बहुत बड़ी महिमा है। धम्मपद का एक श्लोक है 'दं संविभागः भगवी बहुमती'। जिसे गौतम बुद्ध ने समविभाग के तौर पर नाम दिया उस दान की अत्यन्त महिमा है। यह शब्द बौद्ध साहित्य में आया। शंकराचार्य से बारह सौ साल पहले से चला आता है यह अर्थ। याने दान का अर्थ सम्यक् विभाजन। भगवी याने भगवान्

बुद्ध—भगवान् बुद्ध ने जिसे संविभाजन नाम दिया था वह। यह मानी हुई बात है।

यह सारी प्रक्रिया जो नहीं जानते हैं वे ऊपर-ऊपर का भ्रम देखते हैं और समझते हैं कि यहाँ पश्चिम में जो चला है पिटी एण्ड मर्सी एण्ड आल्म्स गिविंग और भिखमंगा—ये सारी चीजें वहाँ से लाते हैं और उसका आरोपण यहाँ के शब्दों पर करते हैं और समझते नहीं कि यहाँ की भूमि के शब्दों का क्या अर्थ होता है।

शब्द ही अन्तर्जीवन

खैर, मुझे तो इन शब्दों से इतना बल मिलता है कि मेरे बल को कोई खण्डित नहीं कर सकता जब तक ये शब्द मेरे पास हैं। तुकाराम ने भी कहा था : आम्हा घरी धन शब्दांचीच रत्ने, शब्दांचीच शस्त्रें यत्न करूं। शब्दचि आमुच्या जीवाचें जीवन। हमारे जीवन की जो अन्तःस्फूर्ति है वह शब्दों की है। शब्द हमारे रत्न हैं और शब्द ही हमारे शस्त्र हैं। इससे बढ़कर कोई रत्न नहीं हो सकते और इससे बढ़कर कोई शस्त्र नहीं हो सकते—तुकाराम कह रहा है। तो, यह जो तुकाराम कह रहा है वह जो शब्द है प्राचीन काल से आज तक शब्दों की जो अखण्ड धारा बहती आयी है वह बहुत ही मनोरम सृष्टि है। हमारी सब भाषाओं में वे शब्द घुल-मिल गये हैं।

अहिंसक क्रान्ति की प्रक्रिया

यह सारी जो सृष्टि अपने देश की है वह अहिंसक क्रान्ति की प्रक्रिया है। पुराने शब्द तोड़ो पुराने विचारों को खण्डित करो उनकी जगह नये शब्द लाओ अपने यहाँ की भूमि में एक नयी शब्द-सृष्टि पैदा करो तो वह विचार-बीज यहाँ गहराई में नहीं जाता उसमें से वृक्ष पैदा नहीं होता और उस वृक्ष में ताकत नहीं आती। उसके बजाय अगर एक बाँस से लिया जाय जैसा कि आजकल लोग प्रयोग करने जा रहे हैं बाँस पर गन्ने की कलम लगाने का प्रयोग। इसमें बाँस की ताकत और गन्ने की मधुरता

कम कहलाती है। जब वह फैली हुई हो। 'गुर्वी' याने जब हम उसका भार ध्यान में लें तब वह 'गुर्वी' कहलायेगी। इस तरह एक ही पृथ्वी के जो दस पाँच नाम होते हैं वह व्यर्थ का परिग्रह नहीं है। इंग्लिश में 'वाटर' कहते हैं दूसरा शब्द नहीं। लैटिन का 'हाइड्रो' वगैरह होता होगा। लेकिन हमारे यहाँ उदक, नीर, जल है यह किसलिए बना! यह कोई परिग्रह नहीं बढ़ाया है। एक-एक शब्द की ओर देखने की एक एक दृष्टि है। उस उस दृष्टि से देखते हुए वह शब्द प्रचलित होता है। इसलिए हर शब्द जानदार, प्राणवान्, जोरदार है और बोलता है। ऐसे बोलनेवाले शब्दों की भाषा हम न समझें और उसका अंग्रेजी में तर्जुमा करके उसके आधार से उस पर प्रहार करते जायें तो उसका यह अर्थ हुआ कि हम अपने वेद को क्या ताकत है, इस बात को बिलकुल ही समझे नहीं हैं।

इन्दौर —प्रार्थना-प्रवचन
५-८ ६

उसके बाद ब्रह्मचर्य का पालन गृहस्थ की मर्यादा में, गृहस्थ के लिए होता है। फिर वानप्रस्थाश्रम और संन्यास में इसकी पूर्णता होती है। यह गायत्री मन्त्र सिर्फ ब्रह्मचर्याश्रम में पढ़नेवाले विद्यार्थियों के लिए ही नहीं है, सबके लिए है। उसके चौबीस अक्षरों को चौबीस वर्ष के प्रतिनिधि मानकर ब्रह्मचर्य का विशेष ध्यान किया गया है। इस मन्त्र का छन्द गायत्री त्रिपदा है। अक्सर सारे छन्द दो या चार चरणों के होते हैं लेकिन यह तीन चरणों का है और त्रिपदा बहुत अच्छी बैठती है। दो पाँववाली चीज मनुष्य है चार पाँववाली चीज जानवर है तीन पाँववाली ट्राइसिकिल होती है बाकी कोई जानवर हो तो मालूम नहीं। त्रिपदा तिपाई बहुत अच्छी बैठती है। चार पाँववाली चीज भी जरा कमजोर पड़ती है। पर त्रिपदा मजबूत बैठती है।

वेद-सार भगवान् का नाम है

वेद-सार भगवान् का नाम है। भगवान् का कोई स्वतन्त्र नाम होना चाहिए, ऐसी अपेक्षा भक्तों की होती है। यद्यपि विष्णुसहस्रनाम में भगवान् के एक हजार नाम हैं संध्या-उपासना में चौबीस नाम बोले जाते हैं और वैसे भगवान् के तो अनन्त नाम होते हैं। रामानुज ने बहुत बड़ा विचार रखा। उन्होंने कहा कि दुनिया के जितने शब्द हैं उन सबका अर्थ भगवान् है। हर शब्द के दो अर्थ होते हैं। एक बाह्य अर्थ होता है और दूसरा आंतरिक। हर शब्द का आंतरिक अर्थ भगवान् है। इस दृष्टि से शब्दमात्र भगवान् के नाम हैं। वस्तुतः वह नाम-रहित है। लेकिन चिन्तन के लिए नाम लिये जाते हैं। अपने देश में भगवान् का नाम दिया गया है। राम-नाम इन दिनों चल रहा है सगुण परमेश्वर के लिए। उसीको निर्गुण मानकर कबीर, नानक आदि ने प्रयोग किया है। राम मूलतः सगुण होते हुए भी सगुण और निर्गुण के प्रतिनिधि हो चुके हैं लेकिन इस नाम के अलावा जो उत्तम नाम वैदिक धर्म में चला वह है ॐ। ॐ वेदों का सार माना गया जैसे रामायण का सार राम-नाम है।

ॐ भगवान् का नाम

ॐ के तीनों वर्ण मिलकर एक मात्रा मानी गयी है, इसलिए गायत्री त्रिपदा है। गायत्री मंत्र का एक-एक चरण, ॐ की एक-एक मात्रा है। संपूर्ण गायत्री-मंत्र ओंकार का विवरण है ऐसा माना जाता है। फिर भी गायत्री में शुरू में 'ॐ भूर्भुवः स्वः' इस तरह भगवान् का नाम-स्मरण करके पश्चात् मंत्र बोला जाता है। ॐ तो परमात्मा का नाम है जो अपने हृदय में अन्तरात्मा के रूप में है और दुनिया में विश्वात्मा के रूप में है। उसके 'भूर्भुवः स्वः' ये तीन भाग हैं।

भूर्भुवः स्वः

पृथ्वी अन्तरिक्ष स्वर्ग, त्रिलोकी जो सामने दृष्टि पड़ती है उसमें स्वर्ग याने ऊपर का हिस्सा। जहाँ बहुत सारे नक्षत्र और तारे चमकते हैं, वह है स्वर्ग। ये तीन हिस्से ब्रह्माण्ड के हैं वे अपने पिंड में भी हैं। भूः याने शरीर, देह अन्तरिक्ष के लिए भुवः शब्द लिया। उसका अर्थ प्राण है। और स्वर्ग के लिए स्वः शब्द लिया उसका अर्थ मन है। देह प्राण और मन ये अन्तरात्मा के तीन प्रकट भाग हैं और सृष्टि में पृथ्वी अन्तरिक्ष और स्वर्ग ये तीन भाग हैं। इस तरह पिंड और ब्रह्माण्ड दोनों की तरफ ध्यान रखकर ॐ भूर्भुवः स्वः इसका अर्थ मुख्यतः देह प्राण और मन ही लेना चाहिए। यहाँ अन्तरात्मा का चिंतन करते हैं वहाँ देह प्राण मन यही अर्थ लेना चाहिए। यह उस मंत्र की शुरुआत है।

व्यक्तिगत सामूहिक प्रार्थना

'धियो योनः प्रचोदयात्' यह वरदान माँगा है। भगवान् हमारी बुद्धि को प्रेरणा दे। मुख्य प्रार्थना का जो अंश है जिसे हम माँग कहते हैं वह इतनी ही है। उसमें ध्यान खींचने लायक चीज यह है कि अपने लिए जो माँगा है उसमें सबके लिए यह बीज रूप भावना की है। यद्यपि गायत्री मंत्र एकान्त में गाया जाता है तथापि एकान्त में बैठे-बैठे सब में सबको मानकर ही यह प्रार्थना करेगा। इसमें सामूहिक

और व्यक्तिगत प्रार्थना का जोड़ है। व्यक्तिगत प्रार्थना में मनुष्य अपने लिए सोचता है और ईश्वर के साथ अपना नाता जोड़ता है। सामूहिक प्रार्थना में सबके लिए सोचता है, बन्धु, सज्जन, भाई, बहन यानी समाज के साथ अपना नाता जोड़ता है और उनके जरिये परमेश्वर के साथ सम्बन्ध जोड़ता है। दोनों प्रार्थनाएँ एक-दूसरे की पूरक हैं। सामूहिक प्रार्थना में भी एकाग्रता कई बातों पर निर्भर करती है। एक साथ एक समय सब बैठते हैं तो पूर्णता का अनुभव आता है। एकाग्रता के लिए सबका सहयोग चाहिए और कई प्रकार का संयोग बनना चाहिए। संयोग अगर नहीं बनते तो प्रार्थना में एकाग्रता रखना बड़ा मुश्किल होता है। इसका अभ्यास करना होगा। पर एकान्त में एकाग्रता की सहूलियत है बशर्ते कि चित्त चारों तरफ जाने न लगे। बहुधा ऐसा होता है कि जैसे समुदाय में सबके सहयोग से अनुकूलता होती है वैसे एकान्त में एकाग्रता से अनुकूलता होती है और जैसे समुदाय में सबके प्रयत्नों से एकाग्रता होती है वैसे व्यक्तिगत प्रार्थना में चित्त पर बाह्य अंकुश न होने के कारण चित्त के चारों तरफ दौड़ने का या निद्रा में डूब जाने का डर होता है। इसलिए दोनों ओर खतरा होता है। अतः दोनों में इसका ख्याल रखना पड़ता है। एकान्त में भी समूहों का ख्याल करके ही प्रार्थना हो तो दोनों के गुण उसमें आ सकते हैं। ऐसी प्रार्थना में हमारी बुद्धि को प्रेरणा दे इस तरह एक-एक आदमी व्यक्तिगत तौर पर अलग अलग बैठकर प्रार्थना करता है। उसमें सामूहिक और व्यक्तिगत दोनों प्रार्थनाओं का योग होता है। भगवान् के पास बैठकर अपने लिए कुछ माँगो तो उसमें हम आत्मा की व्यापकता भूल बैठते हैं और भगवान् के पास बैठकर सबके लिए माँगो तो आत्मा की व्यापकता का ठीक ख्याल होता है। इसलिए यह विशेष माना जायगा कि एकान्त में बैठकर भी समूह के लिए प्रार्थना की गयी। यह इसकी विशेषता है।

बुद्धि का मार्ग-दर्शन मांगना चाहिए

दूसरी विशेषता इसमें यह है कि बुद्धि की प्रार्थना की है। दूसरी भी

याचना की जाती है, लेकिन सिर्फ बुद्धि को प्रेरणा दे ऐसा इसमें कहा है। मनुष्य के लिए मार्गदर्शक के रूप में आखिरी चीज बुद्धि ही है। उसके नीचे मन इन्द्रिय आदि आदि आता है। गुरु हमें उपदेश देता है, तो उसे समझने के लिए भी बुद्धि चाहिए। शिष्य नहीं समझ सका या गलत समझा तो गुरु और शिष्य के बीच दीवाल बनेगी। यह ठीक है कि गुरु बार-बार समझायेगा लेकिन शिष्य बार बार नहीं समझेगा तो मुश्किल होगी। इसलिए मनुष्य के पास निर्णय करने का अंतिम साधन बुद्धि ही है। इस जमाने में निर्णय करने की शक्ति बहुत महत्त्व की हो गयी है। इसी जमाने में नहीं हर जमाने में बुद्धि का मार्गदर्शन मानना चाहिए। उपनिषद् में है—'बुद्धिं तु सारथिं विद्धि'। बुद्धि सारथी है। रथ को चारों तरफ इधर-उधर ले जाना है तो कहाँ ले जाना उसके लिए साधन बुद्धि है ऐसी उपमा उपनिषद् में है। यद्यपि गीता में भगवान् स्वयं सारथी बने हैं। उपनिषदों में जीवात्मा को रथी बनाकर बुद्धि को सारथी कहा है। एक ओर बुद्धि सारथी है दूसरी ओर भगवान् सारथी हैं। भगवान जहाँ सारथी बना है वहाँ मनुष्य की बुद्धि को प्रेरणा देकर ही आगे चलाते हैं। भगवान् यह नहीं करना चाहते कि मनुष्य की बुद्धि की चालना किये बिना प्रयत्न किए बिना इसका उद्धार हम कर दें। जैसे कोई भाग्यशाली होती है उसको अन्दर उठाकर इधर उधर ले जाना हो तो इन पल्याणी है। वैसे सदा मनुष्य को भगवान् के दरबार में भगवान् परमात्मा उसकी बुद्धि को किसी प्रकार का मौका दिये बिना —इस तरह भगवान नहीं करता है। अगर ऐसा करें तो मनुष्य का विकास नहीं होगा। इसलिए इस मंत्र में भगवान् से यह याचना नहीं की है कि तू हम मदद कर। याचना यह है कि हमारी बुद्धि को प्रेरणा दे। हम सबों का एक काम अपना होता है यह काम बुद्धि से होगा इसलिए बुद्धि को प्रेरणा दे।

माँगना है तो बुद्धि माँगो

इसमें मन्त्रद्रष्टा ने सब कुछ बुद्धि पर छोड़ दिया है। अन्दर

और व्यक्तिगत साधना का जोड़ है। व्यक्तिगत प्रार्थना में मनुष्य अपने लिए सोचता है और ईश्वर के साथ अपना नाता जोड़ता है। सामूहिक प्रार्थना में सबके लिए सोचता है, सन्त सज्जन भाई बहन वाले समाज के साथ अपना नाता जोड़ता है और उनके जरिये परमेश्वर के साथ सम्बन्ध जोड़ता है। दोनों प्रार्थनाएँ एक-दूसरे की पूरक हैं। सामूहिक प्रार्थना में भी एकाग्रता कई बातों पर निर्भर करती है। एक साथ एक समय सब बैठते हैं तो पूर्णता का अनुभव आता है। एकाग्रता के लिए सबका सहयोग चाहिए और कई प्रकार का संयोग बनना चाहिए। संयोग अगर नहीं बनते तो साधना में एकाग्रता रखना बड़ा मुश्किल होता है। इसका अभ्यास करना होगा। पर एकान्त में एकाग्रता की सहूलियत है बशर्ते कि चित्त चारों तरफ जाने न लगे। बहुधा ऐसा होता है कि जैसे समुदाय में सबके सहयोग से अनुकूलता होती है वैसे एकान्त में एकाग्रता से अनुकूलता होती है और जैसे समुदाय में सबके प्रयत्नों से एकाग्रता होती है वैसे व्यक्तिगत साधना में चित्त पर बाह्य अंकुश न होने के कारण चित्त के चारों तरफ दौड़ने का या निद्रा में डूब जाने का संभव होता है। इसलिए दोनों ओर खतरा होता है। अतः दोनों में इसका बचाव रखना पड़ता है। एकान्त में भी समूहों का बचाव करके ही प्रार्थना हो तो दोनों के गुण उसमें आ सकते हैं। ऐसी साधना में हमारी बुद्धि को प्रेरणा दे इस तरह एक-एक आदमी व्यक्तिगत तौर पर अलग-अलग बैठकर प्रार्थना करता है। उसमें सामूहिक और व्यक्तिगत दोनों साधनाओं का योग होता है। भगवान् के पास बैठकर अपने लिए कुछ माँगो तो इसमें हम आत्मा की अव्यापकता मान लेते हैं और भगवान् के पास बैठकर सबके लिए माँगो तो आत्मा की व्यापकता का ठीक बचाव होता है। इसलिए यह विशेष माना जायगा कि एकान्त में बैठकर भी समूह के लिए साधना की गयी। यह इसमें विशेषता है।

बुद्धि का मार्ग-दर्शन मांगना चाहिए

दूसरी विशेषता इसमें यह है कि बुद्धि की याचना की है। दूसरी भी

याचना की जाती है लेकिन सिर्फ बुद्धि को प्रेरणा दे, ऐसा इसमें कहा है। मनुष्य के लिए मार्गदर्शक के रूप में आखिरी चीज बुद्धि ही है। उसके नीचे मन, इन्द्रिय साहित्य आदि आता है। गुरु हमें उपदेश देता है, तो उसे समझने के लिए भी बुद्धि चाहिए। शिष्य नहीं समझ सका या गलत समझा तो गुरु और शिष्य के बीच दीवार बनेगी। यह ठीक है कि गुरु बार-बार समझायेगा लेकिन शिष्य बार-बार नहीं समझेगा तो मुश्किल होगी। इसलिए मनुष्य के पास निर्णय करने का अंतिम साधन बुद्धि ही है। इस जमाने में निर्णय करने की शक्ति बहुत महत्त्व की हो गयी है। इसी जमाने में नहीं हर जमाने में बुद्धि का मार्गदर्शन मानना चाहिए। उपनिषद् में है—'बुद्धिं तु सारथिं विद्धि'। बुद्धि सारथी है। रथ को चारों तरफ इधर उधर ले जाना है तो कहाँ ले जाना उसके लिए साधन बुद्धि है ऐसी उपमा उपनिषद् में है। यद्यपि गीता में भगवान् स्वयं सारथी बने हैं। उपनिषदों में जीवात्मा को रथी बनाकर बुद्धि को सारथी कहा है। एक ओर बुद्धि सारथी है दूसरी ओर भगवान् सारथी हैं। भगवान् जहाँ सारथी बनते हैं वहाँ मनुष्य की बुद्धि को प्रेरणा देकर ही आगे बढ़ाते हैं। भगवान् यह नहीं करना चाहते कि मनुष्य की बुद्धि को चालना दिये बिना प्रेरणा दिये बिना इसका उद्धार हम कर दें। जैसे कोई मालगाड़ी हाथी है माल अन्दर रखकर इधर उधर ले जाना हो तो ट्रेन पहुँचाती है। वैसे जबरन् मनुष्य को भगवान् के दरबार में भगवान् पहुँचायेगा उसकी बुद्धि को किसी प्रकार का मौका दिये बिना—इस तरह भगवान् नहीं करते हैं। अगर ऐसा करें तो मानव का विकास नहीं होगा। इसलिए इस मंत्र में भगवान् से यह प्रार्थना नहीं की है कि तू हमें मदद कर। प्रार्थना यह है कि हमारी बुद्धि को प्रेरणा दे। हमें यहाँ का जो काम सौंपा गया है वह काम बुद्धि से होगा इसलिए बुद्धि को प्रेरणा दे।

माँगना है तो बुद्धि माँगो

इसमें भगवद्भक्ति के साथ-साथ बुद्धि पर जोर दिया है। भगवद्

भक्ति के साथ-साथ इसलिए कि भगवान् से साक्षात् प्रार्थना की है। मांग करनी है तो बुद्धि की माँग करनी चाहिए। क्योंकि बुद्धि प्रेरणादायी है। यह एक शक्ति भी है। लेकिन बुद्धि में गलत प्रेरणा और बुद्धि ने अगर गलत दिशा में ले जाने का सोचा, तो मनुष्य बुद्धि मनुष्य का अत्यन्त नुकसान करेगी। बुद्धि सात्विक राजस और तामस होती है यह गीता ने कहा है। राजस बुद्धि हो तो मनुष्य को मैं ले जायगी। इसलिए बुद्धि सात्विक होनी चाहिए और सात्विक बुद्धि की प्रार्थना की गयी है। पहले भगवान् के वर्णन का अंश है। इसका ध्यान करते हैं ऐसा वाक्य आया है—'धीमहि'। हम ध्यान करते हैं। आगे ध्यान कर रहे हैं ऐसा होगा। लेकिन हम ध्यान करते हैं, यह उसमें है। किस चीज का हम ध्यान करते हैं? ध्यान के लिए ध्यानगम्य वस्तु चाहिए। इसलिए सविता का नाम लिया।

सविता : प्रेरणा देनेवाला

सविता शब्द देवता का वाचक है। वेदों में शब्दरूप देवता माने गये हैं। सविता याने स्थूलमूर्ति सूर्य जिसका सामने उदय हो रहा है जो सामने खड़ा है। लेकिन सविता एक शब्द है और देवता का रूप शब्द ही होता है ऐसा शास्त्रकार कहते हैं। सविता का अर्थ है प्रेरणा देनेवाला। प्रेरणा देनेवाले भगवान् से प्रेरणा देने की मांग की है। प्रेरणा देनेवाले से प्रेरणा की माँग करते हैं। भगवान् के तो अनेक गुण हैं। अगर दया का गुण चाहते हैं तो दयालु भगवान् की भावना करेंगे—'रहमानुर्रहीम' भगवान् की भावना करेंगे। प्रेम चाहिए, तो प्रेममय भगवान् से प्रेम मांगते हैं। जिस गुण की प्राप्ति करनी है उस गुण की परमेश्वर से याचना करते हैं। परमात्मा के अनन्त गुण हैं, लेकिन ध्यान के लिए विशेष गुण का ही ध्यान हो सकता है। किस गुण का ध्यान होगा? उसका जिस गुण की चाह है। भक्ति का ध्यान हो सकता है तो गुण प्राप्ति भक्ति का स्वरूप होगा। नाना [illegible] में भक्ति का

स्वयं बाबा मनोरमा बताया है— बिनु गुन कैसे भगति न होई। गुण प्राप्त किये बिना भक्ति होती नहीं। सद्गुणों की प्राप्ति ही भगवान् की भक्ति का फल है। यदि भगवान् की भक्ति करते-करते हमें दया प्राप्त न हो तो हमने भगवान् की भक्ति हासिल नहीं की। जिस भगवान् का हम ध्यान करते हैं, वह गुण हमें प्राप्त करना चाहिए, इसलिए उस गुणवान् भगवान् का हम ध्यान करते हैं। भक्ति का स्वरूप गुण प्राप्ति है। इतना करने से भक्ति के विषय में गलतफहमी नहीं हो सकती। भगवान् का नाम लिये बिना भी गुण प्राप्ति हो सकती होगी। कुछ हद तक तो होती ही है। भगवान् का नाम लिये बिना ही अगर कोई गुण प्राप्ति की कोशिश करता है तो वह भी भक्ति करता है लेकिन भगवान् की मदद से गुण-प्राप्ति सुलभता से होती है। इसलिए भगवान् के नाम से यह प्रयास किया जाता है। वास्तव में भगवान् का नाम है ही नहीं। तो हम 'धीमहि'—ध्यान करते हैं। भगवान् का ध्यान करना है इसलिए भगवान् का कोई रूप चाहिए आकार चाहिए सगुण आकार चाहिए इसलिए कहा— ॐ तत् सवितुर् वरेण्यम्। सविता के तेज का हम ध्यान करेंगे। भग शब्द तेजवाचक

ज्यादा मात्रा में हम नहीं आयेंगे कम मात्रा में भी नहीं आयेंगे। इसलिए वरेण्यम् कहा है। उसका अर्थ है, वरणीय प्रभु।

ॐ तत्

ॐ तत्। तत् का मतलब है—ऊँचा आकाश हमसे दूर। सूर्य नारायण का उदय हो रहा है। उस वक्त गायत्री-मन्त्र बोला जाता है। दूसरे वक्त भी गायत्री मन्त्र कर सकते हैं। उसे वक्त की पाबंदी नहीं है लेकिन अक्सर सूर्य का तेज उग रहा है। वहाँ उसका वरण करना है। आप जानते हैं कि जहाँ सूर्य की किरणें आती हैं वहां एक क्षण में लाखों जंतुओं का संहार होता है। वह दाहक तेज है दहन करनेवाला। यह मल का दहन करता है। वह सामने उग रहा है और हम यहाँ खड़े हैं। ॐ तत् सवितुर्वरेण्यम् भर्गोदेवस्य धीमहि। देव शब्द का अर्थ है देने के लिए बैठा है। हम वरण करें वे देने के लिए तैयार हैं। वे देव हैं इसलिए कंजूस नहीं हैं। आक्रमणकारी नहीं हैं हमला नहीं करते हैं, लेकिन आप वरना चाहें तो वरिये। वे चाहेंगे कि आप उनका वरण करें। अपनी तरफ से वे देने बैठे हैं तो हमें स्वाभाविक स्फूर्ति होती है और हम माँगते हैं। उनकी तरफ से हमारा वरण हो चुका है तो हम भी माँग करें। केवल हम पर माँग करने का छोड़ा है ऐसा नहीं। वे कहते हैं कि वे बैठे हैं उत्सुकता से देने के लिए बैठे हैं और कहते हैं ले लो। अब हम कहना कीजिये तो देंगे। नहीं तो नहीं देंगे। जैसे बाजार में हम जाते हैं तो दुकान में जाना पड़ता है लेकिन फेरीवाला घर-घर पहुँचता है। कोई तेल लेकर आता है तो घर तक पहुँच जाता है। पर वह भी आक्रमण नहीं करेगा। आपको पूछ लेगा। अगर आपको चाहिए तो देता है नहीं तो चला जाता है। लेकिन वह आपके दरवाजे पर आता है। वैसे प्रभु देव हैं देने के लिए तैयार हैं और राह देखते हैं। अगर आप चाहते हैं, तो वरण करें। ऐसी तैयारी से भगवान् खड़े हैं— भगवान् सूर्यनारायण आपका दरवाजा अगर खुला होगा तो अंदर

जायेंगे। आप जितना खोलेंगे उतना वे अंदर आयेंगे। धक्का देकर अंदर नहीं आयेंगे। वे बाहर खड़े हैं। कहते हैं, 'खोलो और ले लो। आपकी सेवा में उपस्थित हैं। जब चाहें तब ले लो।' कुछ लोग सूर्योदय के बाद आधे घंटे के बाद उठते हैं कुछ लोग जल्दी उठते हैं। उस दिन अण्णासाहब सुना रहे थे: 'कोणी शीघ्र जागणारे कोणी उशा जागणारे।' इस तरह कोई जल्दी उठता है कोई देर से; लेकिन जागते हैं जरूर, क्योंकि भगवान् बैठे हैं। कोई जल्दी जागेगा कोई चार बजे कोई छह बजे कोई सूर्योदय के बाद कोई आठ बजे—जरा ही देर करें लेकिन उठते ही हैं। भगवान् खड़े हैं तो हरएक जाग जाता है। इस तरह जगत् में अलिप्तता दिखायी है। वर्ड्सवर्थ ने मिल्टन का वर्णन किया है: Thy soul like a star that dwelt ap rt.' —तेरा मन तारिका के समान सबसे ऊँचा रहा है। हम लोग तारिका की उपमा नहीं देते हैं सूर्यनारायण की देते हैं। वे अलिप्त तो हैं लेकिन व्यापक हैं। इसलिए ज्ञानदेव ने कहा है: 'भानु बिंब पहा निर्मळ निराळे।'—भानुबिंब सामने है वह निर्मल है और निराला याने सबसे अलग है निर्लिप्त है। तो सविता को वरने की जिम्मेवारी आप पर है। उसका तेज दाहक है इसलिए मन का दहन अवश्य होगा यह बताया है। देव यानी देने के लिए तैयार बैठे हैं। धीमहि याने हम सब मिलकर ध्यान करते हैं। चाहे कोई अलग बैठा है लेकिन अपने में सबको *मानकर प्रार्थना करता है। प्रार्थना में बुद्धि की प्रेरणा की प्रार्थना की है।*

किया मिट्टी का पशुपति

सूर्य को भगवान् का प्रतीक माना गया है। इसीलिए निराकारवादी हमेशा इनके खिलाफ बोलते हैं। कुरानशरीफ में वह निराकारवादी है, लेकिन उसमें भी परमेश्वर का चेहरा और परमेश्वर का हाथ ये दो शब्द आये हैं। हम सब काम करते हैं वह भगवान् के चेहरे के दर्शन के लिए। भगवान् का हाथ हमारे पीछे मदद के लिए आता है। जहाँ भगवान् का हाथ और चेहरा कहा वहाँ साकारत्व का भान

होता है। लेकिन मनुष्य की वाणी है बोलने के लिए, इसलिए कुछ न-कुछ प्रयोग करने पड़ते हैं। प्रयोग करने से उनका मतलब यह ही नहीं है कि प्रभु साकार हैं। वे कहते हैं कि प्रभु निराकार हैं। यहाँ बोलने के लिए क्या दिक्कतें होती हैं यहां यह न हो इसलिए मैं जरा एक समझा दूं। सगुण एक बात है और साकार दूसरी। सगुण निराकार भी होता है और साकार भी। जहाँ गुण है और आकार है वहाँ सगुण साकार होता है। जहाँ गुण है और आकार नहीं है वहाँ सगुण निराकार और जहाँ गुण भी नहीं और आकार भी नहीं वहाँ निर्गुण निराकार होता है। यह जो साक्षात् सृष्टि सामने खड़ी है यह सगुण साकार है और हम जो परमेश्वर मानते हैं वह सगुण निराकार है। जैसे ईसा और नानक के प्रभु सगुण निराकार थे। आकार उनमें नहीं था। परमेश्वर में गुण तो भरे हैं। शंकर और मधुर का प्रभु निर्गुण निराकार था। जहाँ आकार नहीं और गुण भी नहीं ऐसी कल्पना करना मुश्किल है। शंकर के तत्वज्ञान म और कबीर के तत्वज्ञान में भी करीब-करीब निर्गुणता का परमेश्वर है। यह हिन्दुस्तान में प्रचलित है। वैसे सगुण साकार भी प्रचलित है। जहाँ सूर्य को प्रतीक माना वहाँ ईश्वर के एक विभूमान की हम उपासना कर रहे हैं। इस उपासना का कुरान निषेध करता है। 'ला तस्जुदुलिश् शम्सि व ला लिल् कमरि वस्जुदु लिल्लाहिल्लज़ी खलकहुन्न इनकुन्तुम् इय्याहो ताअबुदून' अर्थात् तुम सूर्य और चन्द्र की उपासना मत करो। उनके सामने सिजदा मत करो। अल्लाह को सिजदा करो। जिसने सूर्य और चन्द्र को पैदा किया है, उसकी भक्ति करो इबादत करो। इस तरह स्पष्टरूपेण निषेध किया है। वैदिक धर्म ने कहा: 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति'। सत्य परमेश्वर है। वह एक ही है। वह निराकार है इसमें शक नहीं लेकिन उसका बहुधा याने बहुविधरूपेण वर्णन किया जाता है। तो अग्नि के रूप में, सूर्य के रूप में, वायु के रूप में आदि अनेक रूप में उपासक उपासना करते हैं और उसका वर्णन करते हैं। बहुत लोगों का इस पर आक्षेप है कि 'मिथ्या

वस्तु का आधार लेकर उपासना आप करते हैं। आप परमात्मा की कल्पना सूर्य में करते हैं। यानी आप काल्पनिक उपासना करते हैं। उसका उत्तर यही है सूर्य परमात्मा है ही। परमेश्वर से भिन्न कोई वस्तु नहीं है। उसमें से हमने प्रार्थना के लिए एक वस्तु चुन ली तो गलत काम नहीं हुआ। अगर ऐसा होता कि परमात्मा सृष्टि के बाहर कहीं होता तो मान सकते थे कि सृष्टि में से चीज लेकर परमात्मा का आरोपण मिथ्या आरोपण होता है। लेकिन जैसे तुकाराम ने कहा। केला मातीचा पशुपति। परि मातीची काय माती ! शिवपूजा शिवासी पावे। हम मृत्तिका का लिंग बनाकर उसकी पूजा करते हैं। वह मिट्टी की पूजा नहीं करते। वह शिव है और उसकी हम पूजा करते हैं। 'माती मातीमाजी समावे।' याने शिव का लिंग बनाकर शिव की पूजा करते हैं उसका विसर्जन करते हैं, तो शिव को शिव की पूजा पहुँचती है और वह मिट्टी मिट्टी में मिल जाती है। यानी भगवान् का आरोपण उस पर हमने किया। ठीक वही होता है जब हम मर जाते हैं। अन्तरात्मा परमात्मा में विलीन हो जाता है। देह की मिट्टी ब्रह्माण्ड की मिट्टी में लीन हो जाती है। उसी तरह हम सूर्य नारायण को प्रतीक मानकर पूजा करते हैं उपासना करते हैं तो गलत काम करते हैं ऐसा नहीं माना जायगा। यह काम ज्ञान विरोधी नहीं है। लेकिन सूर्य की तरफ की दृष्टि सीमित रही और सूर्य के अभाव में परमात्मा का अभाव होगा ऐसा माना जहाँ सूर्य का उदय हुआ वहाँ परमात्मा का उदय माना जहाँ सूर्य ऊपर चढ़ा वहाँ परमात्मा भी ऊपर चढ़े और जहाँ सूर्य का अस्त हुआ वहाँ परमात्मा का अस्त हुआ—वे समाप्त हो गये रात में अँधेरा पड़ा तो परमेश्वर खतम हो गया। इस तरह के चित्र लोगों के सामने खड़े करेंगे तो वह भयानक बात होगी। इसलिए ये जो निषेध करनेवाले कुरानवाले या अन्य निराकारवादी हैं उनका भी हम पर उपकार है।

इन्दौर　　　　—[illegible] के कार्यकर्ताओं से
१ ८ ६

८

सत्य, प्रेम, करुणा

वैराग्य और अनुराग का परस्पर स्थान

आप लोग यहाँ एक अच्छी प्रेरणा से एक अच्छा काम कर रहे हैं। यहाँ (गीताभवन में) आने पर हमने यहाँ लगे हुए चित्र देखे। उनमें राम और कृष्ण के चित्र हैं। कृष्ण की बाल-लीला है और राम-जन्म के तुलसी रामायण के पद्य हैं। गीता के कुछ श्लोक हैं और शंकर भगवान् की एक तसवीर है। इस तरह से शंकर, राम और कृष्ण को आपने एकत्र किया, यह बहुत अच्छा काम आपने किया है। लेकिन इसका श्रेय आपको नहीं। यह काम हमारे पूर्वज कर चुके हैं। 'हरि और हर' यानी विष्णु और शंकर में कोई भेद नहीं है। इस समन्वय-विचार को हमारे पूर्वजों ने बहुत अनुभव के बाद सोच लिया है। यहाँ विष्णु के उपासक वैष्णव थे। वे प्रेम प्रधान थे, अनुराग-प्रधान थे। और शैव थे शिव भक्त, जो वैराग्य-प्रधान थे। वैराग्य और अनुराग में पहले तो कशमकश चली, मानो उपासना एक-दूसरे के खिलाफ जा रही हो। ऐसा प्रायः भक्तजनों को हुआ, जो अक्सर एकांगी चिन्तन ही किया करते हैं। इसलिए काफी कशमकश चली। आखिर इन शैव और वैष्णवों को समन्वय का दर्शन हुआ, अभेद उनके ध्यान में आया। एक सिखाता है भगवान् के लिए अनुराग और दूसरा सिखाता है संसार के लिए वैराग्य। दोनों का विरोध नहीं हो सकता। दोनों एक ही वस्तु के दो पहलू हैं। संसार के लिए अगर वैराग्य नहीं होगा तो ईश्वर का अनुराग असम्भव है। ईश्वर के लिए अगर अनुराग नहीं रहा तो संसार के प्रति

रुचि रहेगी ही और वैराग्य नहीं आवेगा। इसलिए संसार-वैराग्य और परमेश्वर-अनुराग ये परस्पर पोषक वस्तुएँ हैं विरोधी नहीं। इन दोनों का समन्वय हो सकता है और करना ही चाहिए। तभी पूर्ण दर्शन होगा। इसका दर्शन हमारे पूर्वजों को हो गया था। यहाँ तक कि 'हरि-हर' नाम की भी एक मूर्ति उन्होंने बना ली। 'हरि-हर' की मूर्ति यानी जिसमें हरि और हर दोनों जुड़ जाते हैं ऐसी मूर्ति। यह काम हमने पहले ही कर रखा था। आपने उसे यहाँ स्वीकार किया है यह अच्छी बात है।

मर्यादा और प्रेम का समन्वय

राम और कृष्ण को आपने इकट्ठा किया यह भी बहुत अच्छी बात है। लेकिन इसका भी श्रेय हम-आपको नहीं है। इसका श्रेय भी पूर्वजों को है। रामचन्द्र सत्याचरण हुए। हमने उनको सत्यनिष्ठा का प्रतीक माना था और सब प्रकार की धर्म-मर्यादा का स्वयं आचरण करके लोगों के सामने रखना यह उनके जीवन का सार था। पश्चात् भगवान् कृष्ण आये जो प्रेम-मूर्ति थे और जिन्होंने सर्वत्र प्रेम प्रवाहित किया। प्रेम के प्रवाह में मर्यादाएँ टूट जाती हैं तो कोई हर्ज नहीं। प्रेम के अभाव में जो मर्यादाएँ टूट जाती हैं वे अधर्म हैं। लेकिन प्रेम के कारण भक्ति की मस्ती के कारण जो मर्यादाएँ टूट जाती हैं उनका टूटना गलत नहीं अनुकूल ही है। इस तरह जब हम समन्वय करते हैं तो यह समझ में आता है। समन्वय नहीं करते हैं तो दोनों में विरोध पैदा होता है। एक तो सत्यनिष्ठ नीति नियमों का दृढ़ आग्रही धर्म परायण मर्यादा-सम्पन्न और दूसरा उन्मुक्त मस्त मर्यादाओं को तोड़नेवाला और प्रतिज्ञाओं का भी परिस्थिति के अनुकूल अर्थ करनेवाला। एक प्रतिज्ञा परायण, उसके अक्षर-अक्षर में अत्यन्त निष्ठा रखनेवाला भावार्थ के साथ अक्षरार्थ का भी पालन करनेवाला। और दूसरा अक्षरार्थ को एक ओर रखकर भावार्थ-प्रधान। इन दोनों में विरोध-सा प्रतीत होता

है। रामचन्द्र का चरित्र आजकल तो उसे हम 'राम-लीला' भी कहते हैं लेकिन यह पीछे से बना हुआ शब्द है। पहले तो 'रामस्य चरितं महत्'। वाल्मीकि ने जब रामायण लिखी, तो कहा कि मैं राम-चरित्र लिखता हूँ। चरित्र जिसे अंग्रेजी में Life कहते हैं यानी जीवनी। रामजी की जीवनी मैं लिख रहा हूँ, ऐसा वाल्मीकि ने कहा। भागवतकार ने कृष्ण के बारे में यह नहीं कहा कि कृष्ण की जीवनी लिख रहा हूँ। कहा कि कृष्ण-लीला का वर्णन कर रहा हूँ। अर्थात् पहले 'राम-चरित्र' और 'कृष्ण-लीला' की बात थी। राम और कृष्ण दोनों का समन्वय नहीं हुआ था। एक थे राम-चरित्र के भक्त और दूसरे थे कृष्ण-लीला के उपासक। एक मर्यादा में रहनेवाले मर्यादाओं की सीमाओं को पवित्र करनेवाले नीतिपरायण और दूसरे मस्त भक्त जिनकी मर्यादाएं टूटती हैं जिसे वल्लभाचार्य ने 'पुष्टि' नाम दिया। मर्यादा विरुद्ध अमर्यादा नहीं मर्यादा विरुद्ध पुष्टि। इसमें विरोध का भास हुआ। राम के उपासकों की मर्यादा देखनी है तो तुलसीदासजी में देखिये। तुलसीदासजी की भक्ति सम्पूर्णतया एक मर्यादा के भीतर है। उनका कोई भी भक्ति-वचन ऐसा नहीं मिलेगा जिसमें समाज-मर्यादा का भंग होता हो। आपको मर्यादा से बाहर जानेवाली 'उन् मर्याद' मर्यादा से नीचे गिरनेवाली नहीं कहता हूँ— मर्यादा से ऊपर जानेवाली 'उन्-मर्याद' ऐसी भक्ति देखनी हो तो सूरदास में देखना चाहिए। सूरदास के पदों में आपको 'उन् मर्याद भक्ति दीख पड़ेगी। सत्य और प्रेम इन दोनों में आरम्भकाल में विरोध प्रतीत होता था। बाद में ध्यान में आया कि सत्य के साथ प्रेम का विरोध जरूरी नहीं है। दोनों का समन्वय हो सकता है। राम और कृष्ण की मूर्ति बनी। और आप जानते हैं कि इन दिनों मनुष्य के नाम भी होते हैं राम-कृष्ण। यानी राम और कृष्ण संयुक्त जैसे हरि और हर को जोड़कर 'हरि-हर' बनाया वैसे ही राम और कृष्ण को जोड़कर 'राम-कृष्ण' बनाया। यह राम-कृष्ण नाम एक ही मनुष्य का रखा जाता है। यह समन्वय हमारे पूर्वज कर चुके थे। और यह मानी हुई बात है कि

राम भक्ति और कृष्ण-भक्ति का मेल होता है और दोनों मिलकर एक भक्ति है ऐसा मानते हैं। इस कारण वह भी आपने ही किया, यह कोई नयी बात नहीं। पुरानी बात को ही आपने ताईद की है। यह अच्छा किया। हरि हर को जोड़ने का और राम-कृष्ण को जोड़ने का कार्य आपने किया और दोनों को गीता का आधार दिया। गीता एक विलक्षण ग्रन्थ है। उसके बारे में दो-चार मिनट बाद कुछ कहूँगा।

अपूर्व अवसर

लेकिन आपने जो दो काम किये उनके अलावा हिन्दुस्तान की सभ्यता की रक्षा के लिए और विश्व-व्यापक जो हिन्दुस्तान का कार्य है वो करने का मौका सामने आया है स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद उस लिहाज से और नया कार्य करने की जरूरत है। एक मौका हमको मिला है जो पहले नहीं मिला था। स्वराज्य-प्राप्ति के बाद जो मौका हमको मिला है उसको हमारे पालिटिक्सवाले सत्ता बाँटने का मौका समझते हैं। लेकिन वे समझे नहीं। दरअसल आज मौका ऐसा मिला है जैसा कि ढाई हजार वर्ष पहले मिला था। इतने वर्षों के बीच सारे भारत में एक राज्य कभी हुआ नहीं था। यों आज भी भारत का एक हिस्सा अलग हो गया है—पाकिस्तान के नाम से। अशोक के जमाने में भी हिन्दुस्तान का एक हिस्सा पाण्ड्य, चेर चोल ऐसे तीन राजाओं के हाथ में था और अशोक के राज्य में शामिल नहीं था। आज वह दक्षिणी हिस्सा तो भारत में शामिल है लेकिन उत्तर का एक हिस्सा पाकिस्तान के नाम से कट गया है। परन्तु फिर भी भारत का जितना हिस्सा एक राज्य में आया है उतना पहले कभी नहीं आया था। दूसरे, विज्ञान का हमको आज जो अवसर मिला है वह अशोक के जमाने में नहीं मिला था।

अशोक का सपना

अशोक ने क्या किया तीन सिंहों को एकत्र किया। तीन सिंह एक करके अपना एक अलग Symbol बनाया। अब यह जैसा पायजामा

तब तो उसी क्षेत्र में उसकी जानकारी थी। आज ज्ञान प्रचार के बहुत बड़े साधन हमारे हाथ में हैं। इसलिए कहता हूँ कि एक मौका भारत को मिला है—अहिंसा की सिद्धि करके दुनिया को प्रेम सन्देश देने का और प्रेम के रास्ते से मसले हल करने की राह दिखाने का। ऐसा मौका, जो पहले कभी मिला नहीं था। अब इस दृष्टि से इस स्वराज का उपयोग करना चाहिए, न कि उसकी सत्ता के टुकड़े हम बाँट लें। और इस तरह हम समझें कि आपना अपना स्वार्थ साधने के लिए एक मौका मिला है। ऐसा हमें नहीं समझना चाहिए। सार यह कि हिन्दुस्तान के सामने जो बड़ा मौका उपस्थित है और हिन्दुस्तान का अहिंसा का जो मिशन पूरा करना है उसके लिए आपने यहाँ इतना जो समन्वय साधा उसमें एक कदम आगे जाकर और एक समन्वय साधने की जरूरत है। वह यह कि भगवान् गौतम बुद्ध को भी यहाँ स्थान देना चाहिए। हरि हर को आपने इकट्ठा करके बहुत अच्छा किया। राम-कृष्ण को साथ रखा यह बहुत अच्छा किया। हरि-हर इकट्ठा करने में आपने अनुराग और वैराग्य को एकत्र किया। राम कृष्ण को इकट्ठा करके आपने सत्य और प्रेम को इकट्ठा किया। दोनों काम बड़े अच्छे किये। अब हम प्रेम के साथ करुणा को जोड़ देना चाहिए।

सत्य-प्रेम के साथ करुणा को जोड़ो

गौतम बुद्ध के रूप में हिन्दुस्तान में करुणा अवतीर्ण हुई थी। आज दुनिया स्वीकार करती है कि कारुण्य-अवतार शाक्यमुनि की इस दुनिया को जरूरत है। उस गौतम बुद्ध को हमको समझना चाहिए, मानना चाहिए कबूल करना चाहिए। इतनी अक्ल हममें होनी चाहिए। समझने की जरूरत है कि गौतम बुद्ध हिन्दू थे और हिन्दी थे। उन्होंने किसी नये धर्म की स्थापना का विचार नहीं किया था। जैसे कबीर ने एक सुधार पेश किया वैसे उन्होंने हिन्दू-धर्म में एक सुधारमार्ग पेश किया था। उसके बाद धीरे-धीरे उसका पंथ बना। एक प्रकार बना—पंथ

बना, यह बाद की बात है। लेकिन वे तो एक उपासना के तौर पर अहिंसा का प्रचार करते थे और दीक्षा देते थे। ऐसे गुरु होते थे। जैसे हिन्दुस्थान में कई गुरु होते हैं। उनके अन्दर-अन्दर कई गुरु होते हैं। और वे गुरु अपने-अपने विचार की दीक्षा उन शिष्यों को देते हैं जो दीक्षा लेने को तैयार होते हैं। इसका मतलब यह नहीं कि वे उस धर्म के बाहर चले जाते हैं। गौतम बुद्ध हिन्दू ही जनमे थे हिन्दू ही मरे थे और हिन्दी थे। ये बातें हमें भूलनी नहीं चाहिए और उनको फिर से रिक्लेम करना चाहिए। आजकल लैण्ड रिक्लेमेशन करते हैं। परती जमीन को हम रिक्लेम करते हैं। उसी तरह गौतम बुद्ध को रिक्लेम करना चाहिए और कहना चाहिए, उन पर दुनिया का अधिकार है। चीन जापान का है इसमें कोई शक नहीं; लेकिन हिन्दुस्थान का भी है। हिन्दुस्थान का कुछ अधिक ही है। एक विचारक के नाते तो सारी दुनिया के साथ उनका सम्बन्ध है। परंतु उनका जन्म भारत-भूमि में हुआ था। इस कारण उनके जन्म के साथ जो उनकी भावनाएँ यहाँ भारत में काम करती थीं उनका लाभ भारत को ज्यादा मिल सकता है और मिलना चाहिए। अतएव राम और कृष्ण के साथ बुद्ध को जोड़ दिया जाय यह अच्छा होगा। लेकिन यह बिलकुल नया कार्य हम कर रहे हैं ऐसा नहीं। यह काम भी एक तरह से हमारे पूर्वजों ने कर ही रखा है। क्योंकि राम को एक अवतार, कृष्ण को उसके बाद का और बुद्ध को तीसरा अवतार मान रखा ही है।

बुद्धावतार

आजकल हम जितने धार्मिक काम करते हैं हिन्दू जितने धार्मिक कार्य करते हैं वह सबके सब 'बुद्धावतारे वैवस्वते मन्वन्तरे'। आज 'वैवस्वत मन्वन्तर' में हम धर्म काम कर रहे हैं नर्मदा की उत्तर दिशा में काम कर रहे हैं। जो दक्षिण में हैं वे 'नर्मदाया दक्षिणे तीरे' कहते हैं। हमारा धर्म-कार्य कहाँ से चलता है वह स्थान दिखाना

पड़ता है। नदियों के साथ संबंध जोड़कर फलाँ नदी के उत्तर में, नदी के दक्षिण में काम कर रहे हैं ऐसा बोलना पड़ता है। सं करना पड़ता है जब कि हम कोई धर्म-कार्य करते हैं। और किस मैं हम कार्य कर रहे हैं। तो बताना पड़ता है। 'वैवस्वत मन्वन्त इस समय वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है। सातवाँ मनु वैवस्व चौदह मनु हैं। छह मनु हो गये सातवाँ चल रहा है। सात और हों कुछ मिलाकर लगभग चार सौ करोड़ साल हो जाते हैं। जो पुराण इतिहास' है वह सात मन्वन्तर का काल मानी दो करोड़ साल क पौराणिकों ने अंदाज लगाया कि पृथ्वी को बने दो सौ करोड़ साल गये। और मुझे कहते हुए खुशी होती है कि वह एक इतिफाक है वैज्ञानिक भी मानते हैं कि पृथ्वी की उत्पत्ति को करीब दो सौ क साल हुए हैं। पुराण के अनुसार पृथ्वी का अन्त होने में और दो करोड़ वर्ष लगेंगे। दो सौ करोड़ साल में पृथ्वी का अन्त होगा वह विज्ञान बोल नहीं रहा है। वह इतना ही बोलता है कि पृथ्वी को बने दो सौ करोड़ साल हो गये। अब हिन्दुओं की कल्पना यह है कि पृ को बने दो सौ करोड़ साल हो गये हैं करीब दो सौ करोड़ साल पृ और रहेगी। और इसके बाद पृथ्वी का प्रलय होगा ऐसा उन्होंने मा है। चौदह मन्वन्तर मान लिये और उसमें से सातवाँ मन्वन्तर इस स चल रहा है। इसलिए इस मन्वन्तर में हम यह धर्म-कार्य कर रहे हैं ये कहा जाता है। किस विचार के माहदत हम काम कर रहे हैं? जैसे कहते हैं सर्व सेवा संघ के मार्फत करते हैं भारत सेवक समाज के मा करते हैं उसी तरह धर्म कार्य में किस विचार के मातहत कार्य करते यह बताना पड़ता है। तो बताया जाता है 'बुद्धावतारे'। हिन्दुओं धर्म-कार्य हम जो भी धर्म-काम करते हैं ब्याह का कार्य हो, दान कार्य हो लोग क्या बोलते हैं? बुद्धावतारे। बुद्ध के अवतार में हम क कर रहे हैं। याने बुद्धावतार अभी चल रहा है। उसके मातहत कार्य कर रहे हैं। तो यह बात भी हमारे पूर्वजों ने समझ ली थी क

काफी कशमकश के बाद समझ की थी। जैसे हरि-हर की कशमकश हुई थी, शैव और वैष्णवों की बाद में समन्वय हुआ; जैसे राम-कृष्ण की कशमकश हुई थी बाद में समन्वय हुआ; वैसे ही बौद्ध-विचार की और वैदिक-विचार की कशमकश हुई थी और कुछ समन्वय कर लिया लेकिन पूरा समन्वय उनका नहीं हुआ। जैसे हरि-हर का पूरा समन्वय हो चुका राम-कृष्ण का पूरा समन्वय हो चुका वैसे वैदिक और बौद्ध विचार का पूरा समन्वय नहीं हुआ। कुछ किया। गौतम बुद्ध को अवतार समझकर मान्य कर लिया। और जो करना बाकी रहा है वह आप अगर कर देते हैं और गौतम बुद्ध की एक मूर्ति यहाँ खड़ी कर देते हैं और यह समन्वय भी करते हैं, तो 'सत्य-प्रेम-करुणा' तीनों का समागम होगा।

सब धर्मों का सार—सत्य प्रेम-करुणा

हम प्रार्थना में अक्सर कहते हैं—भगवान् से प्रार्थना करते हैं। हमने रिवाज डाला है। पाँच छह साल हो चुके। प्रार्थना में हम भगवान् से 'सत्य प्रेम और करुणा' की माग करते हैं। ये तीन अवतार एक के बाद एक भारत मे हुए। राम कृष्ण बुद्ध—सत्य प्रेम करुणा। और यही सत्य प्रेम, करुणा सब धर्मों का सार है। सिर्फ भारत का नहीं। सत्यनिष्ठा उपनिषद् का विषय है वेदों की सत्यनिष्ठा ही प्रमाण है। करुणा का विचार इस्लाम में और भक्तिमार्ग मे प्रधान होता है। 'रहमानुर्रहीम' कहते ही हैं। प्रेम का विचार कुछ भक्ति-मार्गों में और ईसाइयों मे प्रधान है जो वे God is Love कहते हैं। इस तरह सत्य प्रेम, करुणा मे दुनिया के सब धर्मों का सार आ जाता है। सत्य प्रेम करुणा कहने में हिन्दुस्तान के इतिहास का सार आता है। इस तरह भारतीय इतिहास का सार और दुनियाभर के सब धर्मों का सार मिल कर ये तीन गुण बनते हैं—सत्य प्रेम और करुणा। भगवान् में तो अनन्त गुण हैं। फिर पर भी हम तीन गुणों का आवाहन हम करते हैं ताकि हमारा भला हो।

गीता का स्वाद

अब गीता के विषय में दो शब्द कहूँ। यों तो ऐसा दिलचस्प विषय लेकर बोल रहा हूँ कि यदि बोलूँगा तो भी मुझे थकान नहीं आवेगी। गीता बड़ा विचित्र ग्रंथ है। विलक्षण ग्रंथ है। माने हर ग्रंथ का एक कवच होता। जैसे कोई भी फल छिलके बिना दिखता नहीं, कुछ न कुछ छिलका होता है। बाहर की हवा का खराब असर उस पर न हो इसलिए बचाव के लिए एक छिलका होता है। वैसे धर्म ग्रंथों पर एक छिलका हुआ करता है। जैसे केले का छिलका उतारकर अन्दर का खा लेते हैं वैसे ही धर्म पर का छिलका धर्म-ग्रंथ पर का छिलका उतारना पड़ता है और अन्दर का खाना पड़ता है। गीता पर जो छिलका है वह बहुत कठिन और सख्त है नारियल जैसा है। गीता ग्रंथ नारियल के समान है। उसके ऊपर का छिलका हटाना बड़ा कठिन है। अगर बंदरों के हाथ पड़ जाय तो वे क्या करेंगे? उनको पता ही नहीं चलेगा कि अन्दर क्या है। जो उसको छीलना जानेगा, उसे पता चलेगा कि अन्दर सार-गर्भ वस्तु भरी है। ऊपर का ही लेंगे तो क्या सिर पर पटकेंगे उसको? क्या करेंगे वे नारियल को लेकर? अतः गीता का जो ऊपरी छिलका है उसमें युद्ध की समस्या खड़ी कर दी है और आमने-सामने भाई-भाई खड़े हैं कुछ खड़े रहे हैं और अर्जुन है, जो लड़ने से भाग जा रहा है पराङ्मुख हो रहा है। आत्मा की अमरता देह की तुच्छता योग बुद्धि भक्ति ध्यान योग त्रिगुणातीत होने की वृत्ति और क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ को पृथक करना आदि पचास बातें उनके पीछे लगाकर सारा तत्त्वज्ञान कहकर भगवान् उसको युद्ध में प्रवृत्त कर रहे हैं। अजीब-सी बात है कि एक भौतिक युद्ध में और वहाँ भाई-भाई खड़े रहे हैं ऐसे युद्ध में यह ग्रन्थ प्रेरणा दे रहा है। इसीलिए इस ग्रन्थ के ऊपर के छिलके के कारण बहुत लोग बहक गये। नारियल के अन्दर की चीज को जो न जाने वह तो पता नहीं नारियल को क्या समझ बैठे! इसी तरह हुआ भी है। इसी तरह अनार्किस्टों ने गीता का उपयोग किया। गीता के नाम से महात्मा गांधी काम करते

९

एकचित्त, समानचित्त और सहचित्त

व्यक्तिगत सामाजिक और आध्यात्मिक

'सहचित्त' 'एक-चित्त' और 'समान-चित्त' ये तीन पारिभाषिक शब्द हैं। 'एकचित्त' प्रलय का लक्षण है और ऐसा प्रलय सम्भव हो सकता है। 'समान चित्त' समान-कार्यक्रम बनाने में मददगार हो सकता है पर 'सहचित्त' वह शब्द है जिसमें एक-दूसरे के सामने एक-दूसरे के दिल खुल जाते हैं। साधना में 'एकचित्त' व्यक्तिगत है। हर मनुष्य को थोड़ा समय एकाग्रावस्था में जाना चाहिए, लीन होना चाहिए। अपने में लीन होना चाहिए। इस प्रकार के विचारों के मूल में जिस स्रोत से वे विचार निकलते हैं उसमें पहुँचने का मौका मिलता है। निद्रा में एकता आती है। जहाँ सबका एकचित्त होता है वहाँ सामाजिक प्रलय होता है। अगर किसी अच्छे काम में सबका 'एकचित्त' बनेगा तो सबको मुक्ति मिलेगी। अगर किसी मामूली काम में भौतिक दृष्टि से एकचित्त होगा तो प्रलय होगा। धार्मिक दृष्टि से एकचित्त होगा तो मुक्ति मिलेगी। अन्यथा प्रलय होगा। व्यक्तिगत तौर पर एकचित्त हम कर सकते हैं उसीको एकाग्र चित्त कहते हैं। चित्त के अनेक पहलू और कल्पनाएँ हैं। एक कल्पना को पकड़ने से उसमें जो शांति और शक्ति मिलती है उससे 'समान-चित्त' बनने में मदद मिलती है। सामाजिक कार्य के लिए उसका बहुत उपयोग नहीं होगा। आध्यात्मिक काम के लिए व्यक्ति को सह-चित्त की आवश्यकता है। उसमें पूरा दिल एक-दूसरे के सामने खोल सकते हैं। जैसे आपस में हम बिलकुल खुले ढंग से बोलते हैं, वैसे ही

न्समें होगा। जैसे यदि मुझी है, नमस्पेण हमारे सामने है, वैसे ही हमारा दिल खुला होगा तो सहचित्त बनने में मदद होगी।

संसार में सहचित्त दुर्लभ

सहचित्त के आध्यात्मिक काम भी हैं। मनुष्य अपने गुण-दोषों के साथ सृष्टि के सामने खुला है। यह मामूली बात नहीं है। इसी तरह साधक लोग कामन माउंड पर आयें और सहचित्त बनायें। उससे गुणों का संक्रमण होगा। गुणों का योग होगा और दोष-निरसन के लिए मदद होगी। जहाँ यह क्रिया नहीं होती वहाँ साधक-वर्ग का सहचित्त नहीं होता और वहाँ अभिप्राय अलग-अलग देते हैं ऊपर ऊपर के स्तर के होते हैं। नीचे के स्तर में याने अन्तःकरण में वे नहीं पहुँचते। सारी दुनिया के साथ ही ये होते हैं। चित्त में अनेक स्तर होते हैं। बिल्कुल ऊपर के स्तर में ओपीनियन याने अभिप्राय होते हैं। अभिप्राय के लिए दलीलें पेश करते हैं। कभी-कभी वे दलीलें हमें नहीं जँचती हैं तो कामन माउंड नहीं रहता है। उससे सहचित्त बनने में मदद नहीं मिलती। लेकिन यह सारा चित्त के ऊपरी स्तर में होता है। यह सारी हलचल चित्त के ऊपर-ऊपर के स्तर में होती है। अन्तस्तल में जहां गूढ़तम भावना होती है वहाँ ये नहीं होतीं। सहचित्त में मनुष्य जीवन की गूढ़तम भावना को दूसरों के सामने खोलता है। यही चीज संसार में दुर्लभ है परमार्थ में भी दुर्लभ है। संसार में परिवार में माता पिता बहनें बरसों तक साथ रहते हैं पति-पत्नी भी जीवनभर साथ रहते हैं लेकिन उनका सहचित्त नहीं बन पाता। ऊपर ऊपर के स्तर में एकता होती है पर अन्दर के गूढ़भाव में एकता नहीं हो पाती। वहाँ संशय भी पड़ा है शंका भी पड़ी है। क्या मालूम कि उसके दिल में क्या है—इस तरह उलटे पुल्टे धारणाएँ मनुष्य करता है। प्रेम है इसलिए व्यवस्था एक चलती है लेकिन सहचित्त नहीं है। जैसे पार्वती परमेश्वर एक है और चित्रकार ने अर्धनारीनटेश्वर का चित्र बनाया है उसमें हम देखते हैं कि दोनों पति

पत्नी एकरूप हैं उनका दिल हृदय एक ही है। बाकी के अवयव अलग-अलग हैं। ऐसी मिसालें हजार में एकाध हो सकती हैं। इसीलिए मैंने कहा कि संसार में सहचित्त दुर्लभ है।

चित्त के स्तर

पारमार्थिक क्षेत्र में भी सहचित्त दुर्लभ है। क्योंकि साधक ऊपर-ऊपर के स्तर में एक होते हैं। ऊपर ऊपर के क्षेत्र में अभिप्राय होते हैं और नीचे के क्षेत्र में विकार होते हैं। अभिप्राय और विकार अलग-अलग हैं। लेकिन उससे नीचे के स्तर में विचार होते हैं। उसीसे वाद बनते हैं। और ये वाद चित्त के ऊपरी छिलके में होते हैं। उसमें साधक रहते हैं। जिस सृष्टि के परिणामस्वरूप चित्त में लहरें उठती हैं उसे विकार कहते हैं। विकार का स्तर ऊपर का है। उसके नीचे विचार का स्तर है। उसके भी नीचे भाव-स्तर है। उस स्तर पर भी साधक एक नहीं होते। वे विचार की चर्चा करते रहते हैं कार्यक्रम की चर्चा करते हैं। यह सारा ऊपर-ऊपर के स्तर में होता है। मैंने अभी कहा कि नीचे के स्तर में भाव होते हैं लेकिन उसके भी नीचे एक स्तर है जिसे अभाव कहते हैं। जहाँ मनुष्य आत्मा की भूमिका में आता है। फिर विकार और विचार का भाव नहीं रहता। इसलिए सत् कह दिया। माने सत् नाम। उसीका अर्थ है आत्मा। मैंने उसे अभाव कहकर आप लोगों में यह भावना पैदा की कि शायद शब्द में कुछ फर्क किया है लेकिन मेरा मतलब यही है कि जहाँ मनुष्य आत्मा की भूमिका में आता है। इसलिए मैंने उसे अभाव कहा। भाव के स्तर पर सहचित्त कभी नहीं होगा। चर्चा होगी। विचार-क्षेत्र में भी सहचित्त नहीं होगा। निर्विकार तो भाव ही है। उसमें हम नहीं पहुँचते हैं। परिणाम स्वरूप मनुष्य का गृह आधार व्यापक रह जाता है मालूम नहीं होता। पति-पत्नी अपने-अपने कार्य में मग्न होते हैं। एक सत्ता एक सब का एक कैबिनेट होती है। उसमें दस पाँच भाई हैं। वे सब मिलकर सारा कार्यक्रम की चर्चा करेंगे।

पूरा भरोसा करते हैं और जिसके लिए किसीको भी अरुचि नहीं होती और उसे भी लोगों के लिए अरुचि नहीं है। वह लोगों के साथ एकात्म हो गया है। लोग और वह मनुष्य एकात्म हो गये हैं।

शुकदेव का सम्पूर्ण भाव खुला था

भागवत में कथा है कि शुकदेव नग्न घूमा करते थे। स्त्रियाँ उन्हें देखती थीं लेकिन उन्हें किसी प्रकार का संकोच नहीं प्रतीत होता था। जैसे बच्चा घूमता है वैसे ही वे घूमते थे। कहा गया है कि एक जगह स्त्रियाँ स्नान कर रही थीं। वे सब पानी में थीं, नग्न थीं। उसी रास्ते से व्यास भगवान जा रहे थे। वे कपड़े पहने हुए थे तो भी स्त्रियों को संकोच हुआ और शुकदेव उस रास्ते से गये तो संकोच नहीं हुआ। मतलब यह कि शुकदेव के सम्पूर्ण भाव स्त्रियों के सामने खुले थे। जैसे मासूम बच्चे हैं उसका जो भी भाव होता है, वह सबके सामने पूरा खुला होता है। वैसी ही स्थिति शुकदेव की थी।

भावों की पुड़िया न बाँधें

जिस मनुष्य का भाव इस तरह दुनिया के सामने खुला है वह ज्ञानपूर्ण न होने के कारण चाहे स्थितात्मा न बनता हो पर उसके मन में किसी प्रकार का संकोच नहीं है। जो कुछ है खुला है। वह ज्यादा तो नहीं है फिर भी जितना है उतना पूरा खुला है। उपनिषद् में कहानी है कि जैसे बालक का मन होता है वैसे ही निष्पाप मन जिसका होता है उसके लिए हरएक के मन में प्यार होता है। अगर आँख न हो तो मनुष्य अन्धा होगा। कान काम न करते हों तो बहरा होगा। लेकिन इन सबके बिना मनुष्य चल सकता है भाव के बिना नहीं चलेगा। मन के बिना भी चलता है जैसे बालक। वे अमना होते हैं। उनके पास मन ही नहीं है। इसलिए बालक व्यवहार नहीं जानते हैं ऐसा मानस-शास्त्र कहते हैं। सुशिक्षित बच्चों के मन थोड़ा काम करते होंगे फिर भी कुछ मिलाकर उनके पास मन नहीं है। वे मनोरहित होते हैं। यह

सकती है। फिर भी श्रद्धा और बुद्धि बिल्कुल अलग अलग चीजें हैं दोनों के कार्य भी अलग हैं। जहाँ श्रद्धा होती है वहाँ अपने पर श्रद्धा रखने की और कर्म करने की शक्ति प्राप्त होती है। कभी कभी सेवा करने की शक्ति श्रद्धा के साथ आती है। सम्भव है कि वहाँ बुद्धि का रास्ता न हो या बुद्धि को यह बात जँचती न हो। बुद्धि यह निर्णय करती है कि रास्ता ठीक है या नहीं। परन्तु दोनों में विरोध नहीं है दोनों परस्पर पूरक हो सकते हैं। लेकिन हों दोनों सात्त्विक। अमुक मनुष्य में बुद्धि ज्यादा है और श्रद्धा कम है अथवा श्रद्धा ज्यादा है और बुद्धि कम है यह कहना ऐसा ही होगा कि अमुक कान बड़े तेज हैं लेकिन आँख उतनी तेज नहीं है कमजोर है। जैसे आँख और कान के विषय अलग हैं वैसे श्रद्धा और बुद्धि के विषय अलग-अलग हैं यह साफ है। लेकिन यह ध्यान में नहीं आता। ये लोग कहते हैं कि देहातवालों में श्रद्धा ज्यादा होती है वे ज्यादा सोचेंगे नहीं तथा शहरों में बुद्धिमान् लोग ज्यादा हैं लेकिन वहाँ श्रद्धा की कमी है। इससे यह सूचित किया कि ये बुद्धिमान् हैं यानी वे हमेशा विरोध करते होंगे। ऐसा मान ही लिया। वास्तव में इसका कोई ताल्लुक नहीं है। दोनों अंग बिल्कुल भिन्न यन्त्र हैं दोनों के भिन्न स्थान हैं।

प्राण-शक्ति और श्रद्धा-शक्ति

बचपन में मेरे दादा चान्द्रायण का व्रत करते थे। चन्द्रमा रोज दो चार-आठ मिनट देरी से ही उगता है। वैसे चन्द्रमा रात में होता है और दिन में भी होता है चौबीस घंटे हुआ करता है। लेकिन रात में दीखता है। उसकी कला जैसे-जैसे घटती थी, वैसे-वैसे मेरे दादा का खाना कम होता था। और वे एक ही ग्रास खाना खाते थे। चन्द्र एक ही कला उगता है यानी दीखता है तो वे भी एक ही ग्रास खाते थे। एक कौर खाते थे और वह कम-बेशी होता था जैसे चन्द्र की कला घटती-बढ़ती थी। पूर्णिमा के रोज वे पन्द्रह कौर खाते थे और अमावस्या

के रोज़ सुन्न। याने एक पाक्ष तो पूरा होता था और उनका खाना अनियमित होता था। लेकिन चन्द्र के साथ नियमितता थी। मतलब चन्द्रमा रोज़ अपने उदय का समय बदलता था। आज कौन-सी तिथि है, यह हमें दादा के पास से मालूम होता था। चन्द्र के उगने से पहले वे स्नान, पूजा आरती वगैरह करते थे। उस वक्त मेरी उम्र कोई तीन-चार साल की होगी। मैं बच्चा ही था लेकिन मेरे दादा का एक नियम था। आरती होने के बाद प्रसाद खाने के लिए वे मुझे उठाते थे। मैं बिल्कुल गाढ़ निद्रा में सोया रहता था। तो भी वे कहते थे कि बिन्या को खाना चाहिए और फिर वे मुझे प्रसाद खिलाते थे। माँ मुझे उठाकर लाती थी और मेरा मस्तक भगवान् के सामने टिकाती थी चाहे मैं सोता रहूँ या नींद खुल जाय। उतना प्रसाद खिलाकर माँ वापस मुझे सुला देती थी। लेकिन यह भी मुझे रोज़ से जाती थी दादा के पास। मैं कभी जागता था कभी नहीं जागता था। जब जागता था तब देखता कि भगवान की मूर्ति के पास कैसे दिये हैं आरती चल रही है मजा आता था और कितना भाव भरे दादा खाते थे, उसीमें से थोड़ा हिस्सा मुझे देते थे। मेरी माँ की इच्छा रहती थी कि मैं वहाँ न रहूँ ताकि मेरे दादा का पास उतना कम न हो। लेकिन उनकी श्रद्धा थी कि बिन्या को देना चाहिए, प्रसाद है उसका असर होता है। मैं नहीं बता सकता कि इस चीज का मेरे जीवन पर कितना असर हुआ। मेरा जीवन जो बना है वह ऐसी ही श्रद्धा से बना है। लेकिन यह बात निश्चित है कि मैं उस चीज को नहीं भूल सकता। रात में उनकी पूजा चलती थी घड़ी बजती थी दिये जलते थे, प्रसन्नता मालूम होती थी प्रसाद मिला तो थोड़ा खाया और सोने चले गये। अब यह श्रद्धा की क्रिया है इसमें बुद्धि का कोई ताल्लुक नहीं। जितना भाव मनुष्य में होता है उतनी श्रद्धा उसमें होती है। जितनी भाव-शक्ति, उतनी श्रद्धा शक्ति जाग्रत होती है।

श्रद्धा एक शक्ति

श्रद्धा बहुत बड़ी शक्ति है। इसलिए श्रद्धा कभी-कभी बहुत बड़े बड़े

ग्राम भी उठाती है। लेकिन कभी-कभी बड़े गलत काम भी उठा लेती है। जैसे हिटलर का काम। हिटलर ने जो काम किया वह बिना श्रद्धा के ही किया ऐसा नहीं कह सकते। उसकी एक अजीब श्रद्धा थी। यहाँ तक कि उसने अपने देश को सजा दी—जो देश मांसाहारी था उस देश को सजा दी—कि गो-मांस खाना बन्द कर दो। वह गाय और बैल के प्रेम के लिए नहीं किन्तु के डिब्बे बाहर से आते थे इसलिए। युद्ध के समय उसे बन्द करना ही उसको ठीक लगा। यह सब श्रद्धा कराती है। मेरे बाबा की श्रद्धा और हिटलर की श्रद्धा दोनों श्रद्धा ही हैं। अगर उसके साथ बुद्धि हो तो वह गलत दिशा में काम नहीं करेगी, लेकिन बुद्धि हो और श्रद्धा न हो तो काम नहीं बनेगा। इसलिए श्रद्धा एक स्वतन्त्र शक्ति है।

श्रद्धा और बुद्धि का मेल

जब मैं आश्रम में था तब सोचता था कि हम लोग प्रार्थना करते हों और नजदीक के कमरे में एक रोगी सो रहा हो तो हमारा जोर-जोर से प्रार्थना करना कहाँ तक ठीक होगा? मेरे बाबा के मन में ऐसी बात नहीं आती थी इसलिए सोये हुए मुझे वे जगाते थे लेकिन मेरे मन में यह बात आती थी कि रोगी की निद्रा में खलल पहुँचाना कहाँ तक उचित है? यह ठीक है कि उसे तकलीफ तो होगी लेकिन मुमकिन है कि इस प्रार्थना से उसका healing भी हो जायगा। याने वह उसके लिए अनुकूल भी हो। लेकिन मैं यह सोचता था कि शायद उसे तकलीफ होती है तो क्या करना चाहिए? जो रेशनलिस्ट बुद्धि है वह ऐसा सोचती है। फिर भी प्रार्थना में आध्यात्मिक श्रद्धा है ही। तो मैं सोचता हूँ कि नजदीक अगर बीमार है तो वह प्रार्थना की आवाज से उठेगा। मुझे प्रार्थना में श्रद्धा है तो उसे भी होनी ही चाहिए यह मैं नहीं कह सकता। अगर प्रार्थना में उसकी श्रद्धा है तो उसको उससे मदद मिलेगी। अब इस पर दो मत हो सकते हैं। लेकिन श्रद्धा और यह विचार, दोनों मूल

प्रार्थना में नहीं हो सकते। हम देखना है रोगी को, तो हम यह कर सकते हैं कि समस्त मौन रखकर बैठें और मौन प्रार्थना करें। यह असंभव नहीं है कि उस मौन प्रार्थना का भी असर उस पर हो। श्रद्धा से अगर हम ऐसी प्रार्थना करते हैं तो जरूर उसका असर होगा। मौन में बैठे हैं पूर्ण ध्यान क्या है तो असर पड़ता है। भगवान् को याद करके हमारा दिल भर आता है तो ऐसी प्रार्थना का आध्यात्मिक असर होगा ही। लेकिन प्रार्थना यन्त्रवत् होगी तो उसका असर नहीं होगा। इसलिए ये सारी प्रकार बुद्धि के साथ जुड़ सकती हैं। एक भाई ने कहा कि प्रार्थना में ऐसा महसूस होता है कि हम यन्त्रवत् श्लोक बोलते हैं। रोज बोलते हैं वही बोलते हैं जैसे एक ही रास्ते से हम रोज चलते हैं तो बिना ध्यान के भी चल सकते हैं। कभी-कभी सोते-सोते भी चल सकते हैं वैसे प्रार्थना में सोते-सोते भी श्लोक बोल सकते हैं। इसलिए प्रार्थना में रोज नित्य नये नये भजन होने चाहिए और अलग-अलग प्रार्थनाएं होनी चाहिए। और उसमें अगर तन्मय हो सकते हैं तो अच्छा है। मैंने इसमें तजवीज की है। अब वह तजवीज का विषय नहीं है। लेकिन जहाँ चर्चा चलती है वहाँ मैं तजवीज करता हूँ। रोजमर्रा खाने के आइटेम्स आप बदलते हैं तो खाना अच्छा लगता है, लेकिन सभी आइटेम्स रोज नहीं बदलते हैं। जो मुख्य आइटेम्स हैं वे रोज रहते हैं और दूसरे आइटेम्स रोज बदलते हैं। मतलब दाल-रोटी कायम रहती है, तरकारी चटनी बदलती है। इस तरह कुछ आइटेम्स रोज बदलते हैं और कुछ कायम रहते हैं। वैसे ही भजन में कुछ चीज ऐसी हो जो रोज हम बोलें और कुछ ऐसी हो जो नित्य बदलें।

जिन लोगों पर हमारी श्रद्धा होती है उनकी बातों का हमारे चित्त पर असर होता है। कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनकी बातें मानना मुश्किल होता है। यह श्रद्धा हम क्यों तोड़ें ? श्रद्धा कर्म शक्ति है। अगर श्रद्धा को काटते हैं तो कर्म शक्ति क्षीण होती है और गलत श्रद्धा से काम गलत होता है। इसलिए श्रद्धा होनी चाहिए और वह सात्त्विक होनी

चाहिए। बुद्धि होनी चाहिए, नहीं तो दिशा नहीं सूझेगी। ज्ञानदेव ने गरुड़ाख्यान लिखा है। उसमें लिखा है कि गरुड़ आधे मिनट में सैकड़ों मील दूर जाता है। आप कहेंगे अगर वह अन्धा हो तो दिशा मालूम नहीं होगी। पर वह उड़ता हुआ तो जायगा। नहीं अन्धे गरुड़ को धकेलने के लिए कोई साधन नहीं है। तो वह उड़ नहीं सकता एक जगह बैठा रहेगा। वैसे ही कर्म-शक्ति पड़ी है, लेकिन वह शक्ति लगी नहीं है। मतलब, दिशा मालूम नहीं होती है इसलिए उस कर्म-शक्ति का उपयोग नहीं है। जैसे बच्चे के पास बुद्धि नहीं है श्रद्धा भरी है। पर वह काम नहीं कर सकता। क्योंकि उसके पास बुद्धि नहीं है। मशीन में शक्ति भरी पड़ी है लेकिन चलानेवाला न हो तो मशीन अपनी जगह पर पड़ी है। इसलिए श्रद्धा है तो बुद्धि होनी चाहिए। श्रद्धा से गलत काम होगा तो बुद्धि उसे बचायेगी। इसलिए बुद्धि जरूरी है। अगर सिर्फ बुद्धि है और श्रद्धा नहीं है तो काम नहीं होगा। अतएव बुद्धि के साथ श्रद्धा जरूरी है।

मुख्य वस्तु—जीवन-शुद्धि

तीसरी बात यह है कि श्रद्धा बुद्धि के साथ शुद्धि भी चाहिए। श्रद्धा-शक्ति बढ़ाने का कार्यक्रम और बुद्धि-शक्ति बढ़ाने का कार्यक्रम दोनों *हों और दोनों को शुद्ध बनाने के लिए और एक कार्यक्रम होना चाहिए।* इसलिए साधना हमेशा त्रिविध होती है। उसमें से एक कर्म-शक्ति है, दूसरी योग-शक्ति है और तीसरी ज्ञान शक्ति है। इस तरह तीन शक्तियाँ जो जीवन में काम करती हैं ज्ञान शक्ति कर्मशक्ति और योग शक्ति—ये तीनों एक ही हैं। लोग कहते हैं इन तीनों के मार्ग अलग-अलग हैं। कहीं ज्ञान प्रधान होता है कहीं भक्ति प्रधान होती है और कहीं योग प्रधान होता है लेकिन मार्ग एक ही है। तीनों की जरूरत है और तीनों शुद्ध होने चाहिए। माने श्रद्धा ज्ञान की शुद्धि होनी चाहिए। शुद्धि श्रद्धा के लिए भी जरूरी है और ज्ञान के लिए भी। अगर श्रद्धा न हो तो शुद्धि

कौन स्वीकार करेगा ? श्रद्धा से ही केवल कोई काम नहीं करेगा। पर श्रद्धा के बिना बुद्धि और योग काम नहीं करते हैं। वे ऐसे ही पड़े रहेंगे। मतलब तीनों का तीनों के लिए होना जरूरी है। तीनों अपने लिए जरूरी हैं इसलिए तीनों को साथ ही अपनाना होगा और विविध साधना करनी होगी। इनमें से जो नहीं है उसकी ओर ज्यादा ध्यान देना चाहिए। अगर आपमें श्रद्धा की कमी है तो उसके लिए कोशिश करनी चाहिए। श्रद्धा की बुनियाद आपके पास है तो ज्ञान के लिए आपको कोशिश करनी होगी ऐसा कार्यक्रम आपको बनाना पड़ेगा। श्रद्धा के बिना कोई कार्यक्रम योगी भी नहीं बना सकता। इसलिए ज्यादा जरूरत है शुद्धि की। आपकी जमात ऐसी है, जिसके पास एक विचार और श्रद्धा है। इसलिए आपके लिए कोई तकलीफ नहीं होगी। नये नये विचार आप अपनाते जायेंगे और श्रद्धा तो आपके पास है इसलिए बुद्धि बढ़ाने का कार्यक्रम यानी ज्ञान बढ़ाने का कार्यक्रम आपको लेना होगा। जो कुछ आपके पास है वह शुद्ध स्वरूप में है उसका आग्रह होना चाहिए। जिनके पास विचार और श्रद्धा दोनों नहीं है, उनको दोनों के लिए कार्यक्रम करना चाहिए। वह क्या होगा वह वे देख लेंगे। श्रद्धा कमजोर है तो उसे बढ़ाना होगा। प्राण-शक्ति मजबूत होनी चाहिए। विचार और चिन्तन बढ़े। विचार बढ़ते हैं, तो चिन्तन बढ़ना चाहिए। दोनों में कुछ है कुछ बढ़ाना है और कुछ आप बढ़ाते भी हैं लेकिन सबमें मुख्य चीज जीवन शुद्धि की है। जीवन शुद्ध हो तभी इन ती[illegible] का सही उपयोग होगा।

प्राण-शक्ति क्या है ?

[illegible] सवाल [illegible] है प्राण शक्ति यानी क्या ? यह पेचीदा सवाल है। शास्त्र [illegible] न वायु प्राण यानी वायु नहीं और प्राण यानी क्रिया भी नहीं। तो प्राण यानी क्या ? एक अंदर का तत्त्व है। [illegible] दबा लेने पर भी शरीर में सत्त्व नहीं रहा

और जीवन की रस्सी टूट्ती गयी। तो तत्त्व का अर्थ यहाँ प्राण ही होगा। चिन्तन की प्रेरणा भी एक तत्त्व है और प्राण-शक्ति ऐसी है कि वह मनुष्य से हर काम कराती है। मनुष्य बीमार पड़ा तो कुछ भी काम करने की प्रेरणा उसके पास नहीं है। माने उसमें प्राण कम है। अर्थात् प्राण एक ऐसी शक्ति है, जिसके आधार पर जीवन खड़ा है। मनुष्य मायूस होता है। जीना नहीं चाहता है उसमें किसी चीज की इच्छा नहीं है वह सारी इच्छाएँ प्राण के साथ जुड़ी हैं। बहुतों में जीवन जीने की इच्छा होती है तो उसके साथ उसका प्राण भी पड़ा है। प्राणायाम से शरीर की शुद्धि होती है। शरीर नीरोग बनता है। उससे कुछ मानसिक शुद्धि होती है कुछ बौद्धिक शुद्धि भी होती है। उसमें जीवन ऊँचा चढ़ाने की भी बात है। इसलिए आरोग्य-विद्या प्राप्त होती है। उत्साह, वीर्य ब्रह्मचर्य प्राप्त होता है। ब्रह्मचर्य के बिना प्राण शक्ति नहीं बढ़ती। देह की स्वच्छता नहीं रही तो प्राण कुण्ठित होंगे। ब्रह्मचर्य शरीर की शुद्धि और व्यायाम यह सारा उत्साह बढ़ानेवाला है और प्राण के लिए पोषक होता है। कल ही मैंने पढ़ा कि संगीत से फसल बाने उत्पादन बढ़ा है। अब यह मानने को जी करता है। सुनने में अच्छा लगता है। संगीत से फसल बढ़ती है तो मन को आनंद होता है आराम भी होता है उत्साह भी बढ़ता है लेकिन वह संगीत अच्छा होना चाहिए। मोनोटोनस संगीत बना तो उससे अच्छा मौन लगता है। उससे प्राण-शक्ति जाग जाती है। प्राण याने क्या! क्या वह द्रव्य है! उसकी व्याख्या करना मुश्किल है। यह जरूर है कि जीवन के लिए वह एक अत्यावश्यक चीज है। श्रद्धा वीर्य स्मृति यह सारी चीजें साधक के लिए आवश्यक हैं। वीर्य का काम प्राण शक्ति का अधिक संबंध रहता है।

इन्दौर
१२-८ ६

—धर्मचर्चा-वार्ता में

११

प्रज्ञा-प्राप्ति

प्रज्ञा

भिन्न-भिन्न युगों में भिन्न-भिन्न गुणों की मनुष्य को चाह होती है। कभी करुणा की विशेष आवश्यकता मालूम होती है। अब साम्य की आवश्यकता मालूम हो रही है। कभी नम्रता की कभी ज्ञान-निष्ठा की आवश्यकता मालूम होती है। इस तरह भिन्न-भिन्न युगों में गुणों की आवश्यकताएँ अलग-अलग रहीं और भिन्न-भिन्न युग में भिन्न-भिन्न गुण की आवश्यकता थी उस गुण की प्रेरणा मनुष्य को ज्यादा-से ज्यादा थी। लेकिन उनके मूल में बुनियादी चीज है हर युग में और खासकर इस युग में, निर्णय-शक्ति की, जिसकी हमें सांसारिक कामों में भी जरूरत होती है और पारमार्थिक कामों में भी। गीता ने उसे प्रज्ञा नाम दिया है। उसका अर्थ है जो कभी फेल नहीं होती ठीक ही निर्णय देती है। ऐसी प्रज्ञा जिस मनुष्य में स्थिर होती है उसे गीता ने स्थितप्रज्ञ नाम दिया है। यह गीता का अपना खास शब्द है।

स्थितप्रज्ञ के लक्षणों की विशेषता इस नाम से ही प्रारम्भ होती है। भक्त ज्ञानी योगी आदि नाम सर्वत्र चलते हैं। भक्तों के लक्षण आपको बाइबल में कुरान में भागवत में रामायण में इस तरह जगह जगह मिलेंगे लेकिन स्थितप्रज्ञ के लक्षण से आपको गीता की याद आयेगी। याने गीता ने शब्द ही नया बनाया है। नवीन कल्पना रखनी होती है तो नया शब्द बनाते हैं। यद्यपि स्थितप्रज्ञ एक आदर्श पुरुष का वर्णन है जो लोगों के सामने रखा। तो भी विशेष पुरुष के लक्षण मानकर नया नाम रखना पड़ा यहीं से उसकी विशेषता शुरू होती है। क्योंकि प्रज्ञा

ही मुख्य गुण मानकर प्रस्तुत रखे। वे रूखे-सूखे दीखते हैं। भक्त-लक्षणों की तरह आर्द्र हृदय दीख रहा है, इस तरह का वर्णन इसमें नहीं मिलता। जैसा कबीर ने कहा है 'रूखा-सूखा राम का टुकड़ा' वैसा यह है। लेकिन उसमें एक जगह गीलापन है कुछ नमी है। यह स्थान को भगवान् बता रहे हैं प्रज्ञा-प्राप्ति में रस-निवृत्ति होनी चाहिए और कुछ काम में ज्ञान और प्रयत्न दोनों ताकतें कम पड़ती हैं। वहाँ कहा है: 'परं दृष्ट्वा निवर्तते' और 'युक्त आसीत मत्परः'। दो जगह परमेश्वर का उल्लेख आया है। 'मत्परः' याने मुझे ही 'पर' समझकर मुझमें लीन हो जाओ। मत्परायण भक्त इंद्रियों को काबू में रखता है। वहाँ प्रज्ञा स्थिर होती है, वहाँ वह बिल्कुल लाचार हो जाता है।

संस्कारों की गतिविधि

मनुष्य की दो शक्तियाँ—पुरुषार्थ-शक्ति और प्रयत्न शक्ति, ज्ञान शक्ति और कर्म शक्ति—वहाँ पूर्व-संस्कारों के कारण कम पड़ती हैं और वे पूर्व-संस्कार भी इस जन्म के नहीं अनेक जन्मों से संचित हैं। यह जो अनेक जन्मों की मशक्कत मालूम हुई वह इसलिए कि कुछ संस्कारों की बहुत ज्यादा पकड़ चित्त पर है बावजूद इसके कि प्रकार उल्टा है। उनके कारण चलाना क्या मुश्किल जाता है। और संस्कार भी जिस वक्त हुए उस वक्त व चित्त पर टटते हैं। लेकिन कालक्रमेण वे क्षीण होने चाहिए; क्योंकि काल में वेग-हरण की सामर्थ्य है। किसी भी चीज का वेग जैसे जैसे काल बीतेगा कम होता जायगा। हम गेंद फेंकते हैं तो प्रतिक्षण उसका वेग कम होता जाता है। यही हाल संस्कारों का है। जैसे काल बीतता है वह कम होता है—उनका क्षय होता है। जैसे राम को गुस्सा आया। उसमें बहुत कुछ कर डालने की इच्छा हुई। किसी कारण वह नहीं बना। फिर रात में निद्रा आ गयी। दूसरे दिन वह गुस्सा बहुत कम हो गया। इसलिए इंग्लिश में कहावत है "इस बात पर स्लीप ओवर करो।" याने उसका काल

बीच में चला जाय, तो संस्कार का वेग कम हो जायगा। नींद में क्रोध का वेग कम होता है अर्थात् संस्कार कमजोर पड़ते हैं। कुसंस्कार कमजोर नहीं पड़ते कुसंस्कार कमजोर पड़ते हैं। यह परमेश्वर की कृपा ही है कि कुसंस्कारों का क्षय होता है और सुसंस्कार बढ़ते हैं। नींद में बड़ा भारी गुण है कि मनुष्य साम्यावस्था में पहुँच जाता है। यह बहुत गहरा विषय है इसलिए आज इसे छोड़ देता हूँ।

संस्कारों की स्मृति

मनुष्य में दूसरी एक विलक्षण शक्ति है। वह संस्कारों के कारण बनी है। उसके कारण संस्कार पूर्ववत् कायम रहते हैं। जिस वक्त संस्कार हुआ—किसी वाक्य का शब्द का या ध्वनि का जो संस्कार हुआ—वह स्मरण शक्ति के कारण ताजा होता है। मनुष्य के सामने बहुत बड़ी समस्या है स्मृति पर काबू रखना। जो चीज चित्त में बैठ गयी उसे निकालना—भूलना—यह समस्या है। लेकिन जितना हम भूलने की कोशिश करते हैं उतना वह पक्का होता है। इसलिए साधना में सबसे कठिन कार्य, जो मैंने अनुभव से देखा वह है स्मृति को काटना। कोई बाजीगर खाक पहले सुना हुआ बुरा शब्द स्मरण में आता है। बचपन के संस्कार बहुत तीव्र होते हैं। वे बड़े गहरे होते हैं। यहाँ इन्दौर में मैं देखता हूँ कि बड़े बड़े इश्तहार, चित्र होते हैं। उनका बच्चों के मन पर गहरा असर होता होगा। बच्चों के चित्त पर अगर इन चित्रों का संस्कार जम जाय तो उसे हटानेवाली शक्ति बच्चे को कौन देनेवाला है? इसलिए संस्कारों में जो शक्ति है वह बहुत बड़ी है। भगवान् ने कहा "मैंने योग कहा था और उसमें बहुत काल बीत गया तो वह नष्ट हो गया। वेग-क्षय की सामर्थ्य काल में है। लेकिन स्मृति ऐसी चीज है जो बहुत ज्यादा दखल देती है। इसलिए वह मनुष्य की ताकत के बाहर है। कोई कहता है कि मैं नींद की कोशिश करता हूँ लेकिन नींद नहीं आती। वह कोशिश ही नींद के खिलाफ है। आज मैं जरा थका हुआ था तो प्रार्थना के बाद तुरन्त सो

गया। पाँच मिनट में नींद आ गयी। पाँच मिनट के बाद उठना है, यह समझकर सोया था, लेकिन साढ़े छह मिनट सो गये। उतने में बिल्कुल गहरी नींद का अनुभव किया। नींद के लिए जो प्रयत्न है वह नींद के खिलाफ है। नींद नहीं आती तो शरीर को ढीला छोड़ दो। लेकिन मन को ढीला छोड़ दिया तो मुश्किल है। जैसे प्रयत्न नींद के खिलाफ है वैसे भूलना स्मृति के खिलाफ है। जितना भूलने की कोशिश करते हैं, उतनी याद आती है। रात-दिन वह याद चित्त को घेरे रहती है। इसलिए दूसरी स्मृतियों को जगाने का मौका नहीं देना है। इसलिए भगवान् ने कहा 'युक्त आसीत मत्परः'। 'मत्परः' शब्द का अर्थ इतनी तन्मयता है कि रात-दिन और कोई बात सूझ ही नहीं सकती। दूसरी चीजें सहज ही भूल जाती हैं। आत्मरति में अन्य सब बातों में निद्रा आती। इसलिए स्मृति भ्रंश का विषय यहाँ गौण है। स्थितप्रज्ञ के प्रसंग में स्मृति भ्रंश यानी बुद्धिनाश अर्थात् सर्वनाश कहा है। आत्मस्मृति होनी चाहिए। वह जाती है और अन्य स्मृतियों का असर चित्त पर पड़ जाता है इसलिए उसे स्मृति भ्रंश कहा है। संस्कारों को छोड़ना मुश्किल नहीं मालूम होता लेकिन संस्कारों की स्मृतियों को छोड़ना मुश्किल है। सारी साधना उसमें है 'अनन्यचेताः सततम्'। 'सततम्' यह एक शब्द जोड़ दिया। फिर भी तृप्ति नहीं हुई, तो और जोड़ दिया :

'अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।

स्मृति का महत्त्व कहाँ?

यहाँ स्मृति का महत्त्व है। अन्य वस्तु का विस्मरण करने की कोशिश उन स्मृतियों को जगाती है। गलत स्मृति को हटाने में पाजिटिव प्रक्रिया काम में आयेगी निगेटिव नहीं। उससे स्मरण तो कायम रहता है। इसलिए कहा है 'सुमिरन कर ले रे मना'। कुरान शरीफ में आता है कि सलात याने प्रार्थना बुराई को रोकती है और अच्छे काम में मदद देती है लेकिन "जिक्रुल्लाहु अकबर"। मतलब सलात से भी अल्ला का

गीता में क्षोभ के लिए क्रोध शब्द है। 'कामात् क्रोधोऽभिजायते' इसका भाष्य पहले कहीं पर भी मेरे चित्त को समाधान देने लायक नहीं हुआ। बार-बार मैं स्थितप्रज्ञ के श्लोकों का चिन्तन करता था और कुछ की कुछ संस्कृत टीकाएँ देखीं। प्राकृत की भी देखीं लेकिन कम नहीं। उसमें भी सिर्फ ज्ञानदेव ने ही गीता पर विस्तृत टीका की है। लेकिन संस्कृत का तर्जुमा जिसने किया है उसको precision प्रीसिजन का ख्याल बहुत रखना पड़ता है। यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। जब-जब धर्म की ग्लानि होती है—अब तर्जुमा करने जायेंगे तो धर्म के लिए कौन सा शब्द रखेंगे? Duty Relegion या Righteousness क्या रखा जाय? धर्म का तर्जुमा किस शब्द में करना? अगर ऐसा किया कि जो शब्द ऊपर है वही नीचे रखा यानी धर्म के लिए धर्म रखा तो आप तो प्रतिभा पास हुए। पर संस्कृत में जो टीकाएँ हैं उनमें धर्म शब्द का अर्थ धर्म नहीं लिखा है दूसरा शब्द रखा है। इसलिए वह भीषण बन जाता है। इसके लिए सोचना पड़ता है। जैसे गणित में एकक की वैल्यू बतायी उसमें और कोई भी दो एकक नहीं होना चाहिए। उसी तरह धर्म शब्द का भी तर्जुमा करना हो तो धर्म शब्द का उपयोग नहीं होना चाहिए। इसलिए बहुत सोचकर उसका पर्याय लिखना पड़ता है। मैं पढ़ता था बार-बार, लेकिन नहीं सूझ रहा लगती थी—कामात् क्रोधोऽभिजायते। कामना से क्रोध उत्पन्न होता है। ऐसा अनुभव तो नहीं आता है। आम खाने की इच्छा हुई। हमने आम खा लिया। अच्छा लगा। तो उसमें क्रोध कैसे उत्पन्न होगा? अगर उसमें कोई बाधा आये तो क्रोध आयेगा। आम खाने को मिला तो क्रोध नहीं आता। और गीता तो निश्चित ही कहती है कि कामात् क्रोधोऽभिजायते। यह बात एक मेरे ध्यान में आया कि इसका मतलब है क्षोभ। मूल अर्थ में यह क्षोभ है। कुछ बातें हैं जिनका रूप अब क्षोभ है। आज जिसे हम क्रोध कहते हैं वह क्षोभ का एक प्रकार है। फिर 'क्रोधाद् भवति संमोहः' ऐसा कहेंगे तो उसमें

भय होता है। यह खोज मैंने की, तो मुझे लगा कि स्थितप्रज्ञ के लक्षण में यह बहुत बड़ी खोज है। उसमें दर्शन भरा है।

भगवत्स्मरण आवश्यक

प्रज्ञा की प्राप्ति चाहिए, तो सिर्फ कुसंस्कारों को हटाने से नहीं चलेगा। गलत स्मृतियों को भी हटाना होगा। इसके लिए परमेश्वर की स्मृति का आश्रय लेना पड़ता है। ईसाइयों ने पाप को खतम करने के लिए बताया है कि कन्फेशन करें, कबूल करें, इजहार करें तो पाप खतम होगा। जैसे काम में क्षय करने की क्षमता है, वैसे पाप जाहिर करने में भी सामर्थ्य है। इतना तो ठीक लेकिन जाहिर करने से पुण्य का भी क्षय होता है। यह उनके ध्यान में नहीं आता। स्थापन में—इजहार में—क्षय का सामर्थ्य है। इसलिए कुसंस्कार और कुस्मृतियाँ हटाने के लिए ईसाइयों ने उपाय कन्फेशन का उठाया। पर उसमें भी क्या होता है? कन्फेशन से कुस्मृति पक्की होती है। आज मैंने जाहिर किया कि फलां तारीख को मैंने व्यभिचार किया या फलां तारीख को मैंने कत्ल किया या किसीको ठगा। जाहिर कर दिया, उससे पाप तो गया, कुसंस्कार तो गये। लेकिन इसके आगे अच्छे संस्कार होंगे, तो भी उस चीज की स्मृति याद इजहार से तो पक्की बनी। इसका उत्तर कन्फेशन में नहीं है। मैं मानता हूँ कि कन्फेशन में एक शक्ति है। समाज का भय हमें लिप्सा है, समाज की मदद मिलती है और हमारे हाथ से ऐसे बुरे काम या गलतियाँ नहीं होंगी। लेकिन उसका कारण स्मृति तो बनेगी, रेकार्ड तो हो जायगा। रेकार्ड अच्छे काम का भी होता है और बुरे काम का भी। इसलिए रेकार्ड में से ही वह कैसे हटायें? बुरे संस्कार याद आते हैं। उन यादगारों को स्मृति से कैसे हटायें? बड़ी कठिन समस्या है। बहुत कठिन साधना है। इसलिए गीता में स्थितप्रज्ञ-लक्षण में भगवत्स्मरण की और भगवद्-भक्ति की आवश्यकता बतायी है।

इन्दौर
११-८-६०

—कार्यकर्ता-वर्ग में

स्मरण बेहतर है। प्रार्थना अच्छी चीज है। उससे भलाई की प्रेरणा मिलती है, बुराई दूर होती है। प्रार्थना सदाचार है। सदाचार का संग्रह करना चाहिए। उससे लाभ होता है। लेकिन प्रार्थना से भी बेहतर नाम का स्मरण है। मुसलमानों में पाँच बार प्रार्थना होती है। उससे एक चेक-अप् हो जाता है। डाक्टर कभी-कभी मिलते हैं। वे जाँचते रहते हैं। मैं दवा तो नहीं लेता लेकिन चेक्-अप् कर लेता हूँ। वैसे नमाज द्वारा चेक-अप् होता है। त्रिकाल सन्ध्या से चेक-अप् होता है। लेकिन भगवान् का चिंतन सबसे श्रेष्ठ है। नित्य-स्मरण बताने के लिए संस्कृत में शब्द है—अनुस्मरण। भगवान् का अनुस्मरण, लगातार स्मरण रहे यह भक्ति का परम श्रेष्ठ प्रकार है, जिससे अन्य स्मृतियाँ हट जाती हैं। बुरे संस्कारों को हटाना चाहिए, इसलिए अच्छा संस्कार डालना लेकिन स्मृति बदमाशी यह करती है कि वह अच्छे और बुरे संस्कारों का स्मरण रखती है। वह बुरे संस्कारों को काटती नहीं। जैसे सात में से पाँच गये, तो दो बचे। यह गणित में होता है। लेकिन बीजगणित में ए-बी करने से दोनों कायम रहते हैं एक पॉजिटिव और एक निगेटिव साइन के साथ—धन और ऋण चिह्नों के साथ। बुरे संस्कारों का पराभव हो सकता है लेकिन कुसंस्कारों का स्मरण (रेकार्ड) रह जाता है। याने दोनों रेकार्ड इतिहास में रह गये। मान लीजिये पहले देश पराधीन था। उसमें फरक आया। वह देश अब स्वाधीन हुआ है लेकिन इतिहास में रेकार्ड कायम है कि वह देश पहले पराधीन था। आज स्वाधीन हुआ है तो भी पुराना रेकार्ड कायम है। सवाल यह है कि रेकार्ड से चीज कैसे हटे। जवानी से आपने बचपन हटा दिया और बुढ़ापे से जवानी हटा दी लेकिन बचपन का और जवानी का स्मरण कैसे हटायेंगे? चाहे अच्छे स्मरण हों चाहे बुरे उनको कैसे हटाया जाय? इसलिए भगवत्स्मरण बताया है। असीम मनुष्य पूर्ण निष्काम हो सकता है। गणित में तन्मयता एकाग्रता रात दिन हो सकती है। स्वप्न में भी गणित के उदाहरण दौड़ सकते हैं। जागृति में अगर किसी गणित का उत्तर नहीं मिलता तो सपने में मिलता

गीता में लोभ के लिए क्रोध शब्द है। 'कामात् क्रोधोऽभिजायते' इसका भाष्य पहले कहीं पर भी मेरे चित्त को समाधान देने लायक नहीं हुआ। बार-बार मैं स्थितप्रज्ञ के श्लोकों का चिन्तन करता रहा और कुछ की कुछ संस्कृत टीकाएँ देखीं। प्राकृत की भी देखीं लेकिन सब नहीं। उसमें भी सिर्फ ज्ञानदेव ने ही गीता पर विस्तृत टीका की है। लेकिन संस्कृत का तर्जुमा जिसने किया है उसको precision मीनिंग का ख्याल बहुत रखना पड़ता है। 'यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। जब-जब धर्म की ग्लानि होती है—अब तर्जुमा करने जायेंगे तो धर्म के लिए कौन सा शब्द रखेंगे? Duty Relegion या Righteousness क्या रखा जाय? धर्म का तर्जुमा किस शब्द में करेंगे? अगर ऐसा किया कि जो शब्द ऊपर है वही नीचे रखा जाने धर्म के लिए धर्म रखा तो आप तो प्रतिबिम्ब पास हुए। पर संस्कृत में जो टीकाएँ हैं, उनमें धर्म शब्द का अर्थ धर्म नहीं लिखा है दूसरा शब्द रखा है। इसलिए वह मीसाइल बन जाता है। इसके लिए सोचना पड़ता है। जैसे गणित में एक्स की वैल्यू बताओ उसमें और जो भी हो एक्स नहीं होना चाहिए। उसी तरह धर्म शब्द का भी तर्जुमा करना हो तो धर्म शब्द का उपयोग नहीं होना चाहिए। इसलिए बहुत सोचकर उसका पर्याय लिखना पड़ता है। मैं पढ़ता था बार-बार, लेकिन वहीं मुझे ठेस लगती थी—कामात् क्रोधोऽभिजायते। कामना से क्रोध उत्पन्न होता है। ऐसा अनुभव तो नहीं आता है। आम खाने की इच्छा हुई। हमने आम खा लिया। अच्छा लगा। तो उससे क्रोध कैसे उत्पन्न होगा? अगर उसमें कोई बाधा डाले तो क्रोध आयेगा। आम खाने को मिला तो क्रोध नहीं आता। और गीता तो निश्चित् ही कहती है कि कामात् क्रोधोऽभिजायते। यह सोचते हुए मेरे ध्यान में आया कि इसका मतलब है लोभ। मूल अर्थ में वह लोभ है। क्रुध धातु है जिसका मूल अर्थ लोभ है। आज जिसे हम क्रोध कहते हैं वह लोभ का एक प्रकार है। फिर क्रोधात् 'भवति संमोहः' ऐसा कहेंगे तो सरल

अर्थ होता है। यह श्लोक मैंने पढ़ा तो मुझे लगा कि स्थितप्रज्ञ के लक्षण में यह बहुत बड़ी खोज है। उत्तम दर्शन भरा है।

भगवत्स्मरण आवश्यक

प्रज्ञा की प्राप्ति चाहिए, तो सिर्फ कुसंस्कारों को हटाने से नहीं चलेगा। गलत स्मृतियों को भी हटाना होगा। इसके लिए परमेश्वर की स्मृति का आश्रय लेना पड़ता है। ईसाइयों ने पाप को खतम करने के लिए बताया है कि कन्फेशन करें, कबूल करें, इकरार करें तो पाप खतम होगा। जैसे काम में क्षय करने की क्षमता है वैसे पाप जाहिर करने में भी सामर्थ्य है। इतना तो ठीक लेकिन जाहिर करने से पुण्य का भी क्षय होता है। यह उनके ध्यान में नहीं आया। स्थापन में—इकरार में—क्षय का सामर्थ्य है। इसलिए कुसंस्कार और कुस्मृतियाँ हटाने के लिए ईसाइयों ने उपाय कन्फेशन का उठाया। पर उसमें भी क्या होता है? कन्फेशन से कुछ स्मृति पक्की होती है। आज मैंने जाहिर किया कि अमुक तारीख को मैंने व्यभिचार किया था, अमुक तारीख को मैंने कत्ल किया था, किसी को ठगा। जाहिर कर दिया, उससे पाप तो गया, कुसंस्कार तो गये। लेकिन इसके आगे अच्छे संस्कार होंगे, तो भी उस चीज की स्मृति याद इकरार से तो पक्की बनी। इसका उत्तर कन्फेशन में नहीं है। मैं मानता हूँ कि कन्फेशन में एक शक्ति है। समाज का बल हम मिलता है, समाज की मदद मिलती है और हमारे हाथ से वैसे बुरे काम की गलतियाँ नहीं होंगी। लेकिन उसके कारण स्मृति की पक्की रेकार्ड तो हो जायगा। रेकार्ड अच्छे काम का भी होता है और बुरे काम का भी। इसलिए रेकार्ड से ही वह कैसे हटावें? बुरे संस्कार याद आते हैं। उस पापदाम की स्मृति से कैसे हटावें? यही कठिन सवाल है। बड़ा कठिन मामला है। इसलिए गीता में स्थितप्रज्ञ लक्षण में भगवत्स्मरण की और भगवत् भक्ति की आवश्यकता बतायी है।

इन्दौर
११-८-६

—कार्यकर्ता-वर्ग में

१२

दर्शन का फलित : साम्ययोग

'प्रतिपक्ष भावना से' कुसंस्कार-निरसन

साधक की साधना में सबसे बड़ी मुश्किल कुसंस्कारों को मिटाने की नहीं कुस्मृतियों को मिटाने की है। शिक्षण-शास्त्री जानते हैं कि अच्छे संस्कार या बुरे संस्कार बचपन में हृदय पर गहराई से अंकित होते हैं। अतः शिक्षण-योजना अच्छी हो इसपर जोर दिया जाता है और वह ठीक भी है। शिक्षण-योजना जो भी हो लेकिन जहाँ रजोगुण और तमोगुण काम करता है केवल सत्त्वगुण काम नहीं करता। वहाँ कुछ कुसंस्कारों का होना अनिवार्य सा है। उन कुसंस्कारों को प्रयत्नों से मिटाया जा सकता है। यह मनुष्य के पुरुषार्थ का विषय है। कुसंस्कारों को मिटाने के लिए भगवान् के पास पहुँचना अनिवार्य नहीं उतनी शक्ति मनुष्य को हासिल है। इसीको योगसूत्रकार ने 'प्रतिपक्ष-भावना' कहा है। अगर हिंसा का संस्कार है तो वह अहिंसा के संस्कार से मिटाया जायगा। द्वेष का संस्कार है तो वह प्रेम के संस्कार से मिटाया जायगा। इसे एक प्रक्रिया के रूप में साधना शास्त्र में बताया जा सकता है और मनुष्य प्रयत्न करने से इसे हासिल कर सकता है। यह प्रश्न कु-संस्कारों को मिटाने का है। कुसंस्कार गहरे हों तो अधिक प्रयत्न करना होगा। प्रयत्न की पराकाष्ठा भी करनी पड़ेगी पर वह प्रयत्नसाध्य है ही। कुस्मृतियों को मिटाना अलबत्ता बड़ी कठिन समस्या है।

स्मृति-मुक्ति समस्या

कारण यह कि यह स्मृति रेकार्ड के रूप में रह जाती है। इसलिए

बदलने पर भी रेकार्ड कायम रहता है। रेकार्ड अमान के लिए होली पूर्णिमा की जरूरत होती है। उस दिन कुछ-का-कुछ रेकार्ड स्मृतियाँ जगायी जा सकती हैं। कुस्मृतियों को मिटाने के लिए परमेश्वर की कृपा का आवाहन करना पड़ता है। इसलिए 'युक्त आसीत मत्परः' ऐसा आदेश गीता ने दिया। भक्ति का इस प्रकार अनिवार्य जगह पर आवाहन किया है। इसलिए भक्ति श्रेष्ठ है। ऐसे तो परमेश्वर की शक्ति आरम्भ से आखिर तक प्रारंभ से अन्त तक, मदद करेगी लेकिन कुछ लोग मानते हैं कि ईश्वर पर आधार रखने से मनुष्य प्रयत्न छोड़ता है। ऐसी बात नहीं है। लोग समझते हैं कि अवतार आयेगा और सब करेगा इसलिए कुछ नहीं करना पड़ेगा। वे समझते नहीं हैं। अवतार की राह देखना माने क्या ? अवतार किसलिए आयेगा ? दुर्जनों के विनाश के लिए और सज्जनों के पालन के लिए और इस तरह धर्म-संस्थापना के लिए। अब अगर हम दुर्जन बने रहते हैं तो अवतार आयेगा और हमारा विनाश करेगा। अवतार की राह देखना माने अपने विनाश की राह देखने की बात होगी। अवतार की राह का मतलब ही है सज्जनता की पूर्ण कोशिश। सत्व की राह पर रहने की पूर्ण कोशिश करनेवाले अवतार की राह देखते हैं ऐसा कह सकते हैं। अन्यथा अगर दुर्जन बने रहे आलसी बने रहे और वहीं अवतार आया, तो हमारा विनाश हो जायगा। सारांश ईश्वर-निष्ठा में प्रयत्न का अभाव नहीं है प्रयत्न की पराकाष्ठा है इसलिए ईश्वर की निष्ठा शुरू से आखिर तक मदद देती है। लेकिन जहाँ वह अनिवार्य है माने उसकी मदद के बिना जहाँ चलेगा ही नहीं ऐसा स्थान है स्मृति शुद्धि। इस स्मृति-शुद्धि का क्या किया जाय ? इसका उत्तर मुझे किसी नास्तिक से नहीं मिला। वैसे नास्तिकों से और बहुत चुमा मिलते कि ईश्वर की आवश्यकता नहीं भी मान सकते हैं। लेकिन इस सवाल का उत्तर नास्तिक-दर्शन में इतना ही मिलता है कि कर्म भोग भोगते हुए, अनेक जन्म प्राप्त करते हुए निर्माण हो जायगा। मैंने ने यह उत्तर देने की कोशिश की है।

आत्म-स्मृति की शुद्धि

भगवान् ने इन सब स्मृतियों को स्मृति भ्रंश कहा है। यानी जहाँ आत्म-स्मृति नहीं है वहाँ वे दूसरी स्मृतियाँ होती हैं। इसलिए आत्म-स्मृति की शुद्धि, यह उपाय है कु-स्मृतियों को मिटाने का और शुभ-स्मृतियों को हजम करने का। कु-स्मृतियाँ मिटानी ही होंगी और शुभ-स्मृतियाँ हजम करनी होंगी माने आत्मा में डुबोनी होंगी। अमुक ने बहुत अच्छा काम किया ऐसी एक स्मृति मेरे मन में रह गयी। या बीस साल पहले मैंने बहुत अच्छा काम किया उसकी भी स्मृति रह गयी। दोनों अच्छे कार्यों की स्मृति होने के कारण उसे मिटाना नहीं है। बुरी स्मृतियों को मिटाना चाहिए और शुभ स्मृतियों को हजम करना चाहिए। माने यह पहचानना चाहिए कि जो शुभ कार्य होते हैं उनका आधार न मैं हूँ, न और दूसरा है बल्कि शुभ-कार्य सद्गुणों से प्रेरित होते हैं। ये सद्गुण आत्मा का रूप हैं। इसलिए किसी महात्मा ने अच्छा काम किया या मैंने अच्छा काम किया—यह स्मृति यानी आत्म-स्मृति है शुभ स्मृति है। किसी महात्मा ने अच्छा काम किया तो प्रेम के कारण किया दया और करुणा के कारण किया। मैंने जो काम किया, वह भी प्रेम के कारण किया ऐसे किसी गुण के कारण ही अच्छा काम हुआ है। जितना शुभ-कार्य दुनिया में होता है चाहे इस शरीर द्वारा हुआ हो या दूसरे किसी शरीर द्वारा हुआ हो दया प्रेम-करुणा आदि गुणों द्वारा ही हुआ है। सद्गुणों से प्रेरित हुआ है और वह गुण आत्मा का रूप है इसलिए इनकी स्मृति आखिर में आत्म-स्मृति में डुबोयी जा सकती है। अगर हम ठीक से पहचानें तो यह हो सकेगा। मगर हम इसका अहंकार मानें कि इतना अच्छा काम तो मेरा और उतना अच्छा काम दूसरे किसी का तो गड़बड़ हो जायगा। इतने मेरे अच्छे काम और इतने दूसरे के अच्छे काम यह भेद हो जाय तो आत्म-स्मृति नहीं होगी। आत्म-स्मृति से हम अलग ही होंगे और उसे गीता की परिभाषा में स्मृति भ्रंश ही कहा जायगा। माने आत्म-स्मृति से वह अलग बात होगी। उसमें

फिर किसी महात्मा का विशेष चमत्कार होगा, तो दूसरे किसीका दर्जा कुछ कम होगा । मेरे जरिये बहुत अच्छा बड़ा काम होगा तो मेरा दर्जा मेरे मन में बहुत बढ़ेगा । ये दर्जे बढ़ाने और घटाने के सब काम इन अच्छी स्मृतियों में से होंगे अगर अच्छी स्मृतियाँ गुण-प्रेरित हैं और गुण आत्मा के होते हैं । इसका भान रहा तो हम आत्म-स्मृति से अलग नहीं होंगे इसलिए अच्छी स्मृतियों को आत्म-स्मृति में डुबोना है । इसीका नाम शुभ-स्मृतियों को हजम करना है । मैंने केला खाया और हजम किया तो उसे अपना रूप दिया । केला केले के रूप में खाया और मांस के रूप में वह आ गया यानी शरीर का रूप उसे दिया । (अपना यानी शरीर का ।) केला खाने का सम्बन्ध शरीर से है इसलिए शरीर का रूप दिया । वैसे ही कोई शुभगुण प्रेरित काम हुआ—मेरे जरिये हुआ तो मेरे इस शरीर के जरिये नहीं लेकिन अन्दर जो आत्मा है उसके जरिये हुआ । यह जब ध्यान में आयेगा तब दुनिया में कोई महात्मा नहीं अल्पात्मा नहीं आत्मा ही रहता है । कोई महात्मा है और कोई अल्पात्मा यह कोरा तमाशा ही तमाशा है । दर-असल आत्मा ही है । आत्मा न महान् होता है न अल्प । जहाँ उसके गुण का प्रकाश ज्यादा पड़ा वहाँ महात्मा नाम देते हैं । जहाँ उसके गुण का प्रकाश कम पड़ा, वहाँ अल्पात्मा नाम देते हैं । प्रकाशन एक बात है गुण दूसरी बात है । प्रकाशन कम-बेशी होता है उस पर से हम महात्मा और अल्पात्मा कहा करते हैं । वस्तुतः जहाँ जितना गुण प्रकट हुआ वहाँ आत्मा को ही श्रेय है किसी व्यक्ति-विशेष को नहीं । इस तरह शुभ-स्मृतियों को आत्मा में डुबोना है ।

कुस्मृतियाँ मिटें और शुभ-स्मृतियाँ हजम हो जायँ, तो आत्म-स्मृति जागेगी और दोनों ओर जलेगी । शुभ-स्मृति और कुस्मृति दोनों रहेंगी तो आत्म स्मृति नहीं जागेगी आत्म स्मृति का लोप होगा । आत्म-स्मृति जगाने का उपाय है—भली-बुरी स्मृतियों से अलग होना । भली बुरी स्मृतियों से अगर हम अलग होते हैं तो आत्म-स्मृति रहती है । आत्म-

स्मृति जागेगी तो अन्य स्मृतियाँ जायँगी; और अन्य स्मृतियाँ जायँगी तो आत्म-स्मृति जागेगी। यह है पेंच और इसी पेंच को खोलनेवाली है परमेश्वर की कृपा। इसलिए "मत्परः" कहा है ताकि आत्म-स्मृति जागे और अन्य-स्मृति दूर हो। गीता में अर्जुन ने भगवान् का उपदेश सुना और अर्जुन से जब पूछा गया कि क्या तूने एकाग्र चित्त से सुना? तेरा मोह नष्ट हुआ? उत्तर में वह कह रहा है "नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा।" स्मृति मुझे मिली है। "त्वत्प्रसादात् नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा" मोह नष्ट हुआ अर्थात् भली और बुरी स्मृति गयी और स्मृति मिली याने आत्म-स्मृति मिली। कैसे हुआ यह काम? "त्वत्प्रसादात्"। तेरी कृपा से। उसने बिल्कुल एक धागा रख दिया। मोहनाश याने स्मृतिनाश ये दोनों भगवान् की कृपा से होते हैं। और वह मेरे बारे में अनुभव आया ऐसा अर्जुन बोल रहा है। नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादात्। यहाँ स्थितप्रज्ञ के श्लोक शुरू होते हैं। "क्रोधात् भवति संमोहः" क्रोध से मोह होता है मोह से स्मृतिभ्रंश होता है। अपनी आत्म-स्मृति नष्ट होती है इससे बिल्कुल उल्टी प्रक्रिया अर्जुन की है। यह विषय यहाँ समाप्त कर रहा हूँ।

स्थितप्रज्ञ के लक्षणों में यह बहुत महत्त्व का अंश है।

प्रज्ञनिर्वाण

दूसरी बात—यह सारा विषय स्मृति और प्रज्ञा—योगसूत्रों ने लिया है जो गीता के बाद का है। बौद्ध धर्म ने लिया है जो गीता के बाद का है और वेदोपनिषद् में उसकी शक्ल दीखती है जो गीता के पहले की है। याने वेदोपनिषद् पूर्वदर्शन है। गीता का मध्य-दर्शन है। योगसूत्र बौद्ध आदि का उत्तर दर्शन है या अंतिम दर्शन है। ऐसे तीन दर्शन अपने देश में हैं। बौद्धों ने जैन भी मान लिया। इन तीनों में इसकी चर्चा चलती है बल्कि इसी चीज की चर्चा चलती है 'स्मृति-मुक्ति' और आत्म-स्मृति" का लाभ। अन्य स्मृतियों से मुक्ति। यह ज्यों

होता है वहाँ मनुष्य को निर्वाण प्राप्त होता है। गीता ने कहा, ब्रह्म निर्वाण। आत्म-स्मृति चाहिए। उसके लिए भगवत्-कृपा चाहिए। उससे ब्रह्म-निर्वाण मिलेगा। इस तरह एक ही छोटे-से "स्थितप्रज्ञ-दर्शन" में आत्मा, ईश्वर और ब्रह्म ऐसे तीनों शब्दों का उपयोग हुआ है। आत्मा, जिसकी हमें अनुभूति होती है हम महसूस करते हैं कि हम हैं वह आत्मा है। सामने सृष्टि खड़ी है उसमें परमेश्वर अन्तर्यामी रूप में विराजमान है वह परमेश्वर है। और ब्रह्म वह है जिसमें यह परमेश्वर और यह आत्मा दोनों डूब जाते हैं। शरीरगत शरीर को पहचाननेवाला जो एक तत्त्व है शरीर से भिन्न उसे आत्मा कहते हैं। सृष्टि के अन्दर रहनेवाला सृष्टि को पहचाननेवाला सृष्टि से भिन्न जो एक तत्त्व है, उसे ईश्वर कहते हैं। वहाँ ईश्वर का अनुभव प्राप्त होता है, उसकी कृपा मिलती है। यह रोजमर्रा हम अनुभव करते हैं। हम अनुभव करते हैं फिर भी नहीं समझते कि वह ईश्वर की कृपा है। प्रतिक्षण हम श्वास अन्दर लेते हैं खराब वायु बाहर छोड़ते हैं। बाहर की स्वच्छ निर्मल वायु अंदर लेते हैं। यह ईश्वर की कृपा हो रही है लेकिन हम इसे वायु कृपा समझते हैं। शरीर में जल-तत्त्व है वह कम या सूखता है तो पानी पीते हैं। इसे हम जल-कृपा समझते हैं। परमेश्वर की कृपा नहीं समझते। ऐसी मिसालें बहुत दी जा सकती हैं। हमारा शरीर मत्स्य का बना है। शरीर का वजन जब घटता है शरीर कमजोर बनता है तो बाहर एक मात्र बढ़ानेवाला सृष्टि का अंश है मक्खन और दूध हम खाते हैं और उससे हमारा शरीर बढ़ता है। इसे हम दूध और मक्खन की कृपा समझते हैं। ईश्वर की कृपा नहीं समझते। माने ब्रह्माण्ड की कृपा पिंड पर हो रही है यह नहीं समझते। सूर्य की कृपा आँख पर हो रही है जल की कृपा शरीरगत जलतत्त्व पर हो रही है। वायु की कृपा प्राण पर हो रही है। वह सब हो रहा है इसलिए हम सब कुछ पाते हैं। बाहर की सृष्टि की कृपा इस शरीर पर पिंड पर नहीं होगी तो शरीर काम नहीं करेगा। वह चलेगा नहीं। यह जो हम पर कृपा हो रही है वह सिर्फ ईश्वर-कृपा है। पर हम महसूस नहीं करते हैं।

बल्कि वह स्थूल सृष्टि की कृपा है ऐसा समझते हैं और कुछ हद तक वह सही है। लेकिन जहाँ हम स्वच्छ वायु की मदद लेते हैं फेफड़े मजबूत करने के लिए वहाँ हम यह भी कर सकते हैं कि अन्दर की भौतिक और मानसिक दुर्बलता हटाने के लिए ब्रह्मांड अन्तर्गत स्मृति और मन का भी इस्तेमाल करें। यह हम करते भी हैं। मेरी बुद्धि कमजोर है तो गुरु का बोध मैं लेता हूँ। गुरुकृपा मुझ पर हो रही है, ऐसा हम समझते हैं। उसे ईश्वर की कृपा हम नहीं समझते हैं। जैसे केला खाने से मांस बढ़ा तो केले की कृपा समझते हैं वैसे ही गुरु-कृपा हुई ऐसा समझते हैं। ईश्वर की कृपा हुई ऐसा नहीं समझते। लेकिन एक मौका आता है जहाँ न गुरु-कृपा मदद करती है न वायु कृपा और न और कोई कृपा। वहाँ बाहर से एक मदद मिलने की सूरत है वह जगह है स्मृतियाँ नष्ट करने की। उस वक्त ब्रह्मांड में जो परमेश्वर है उसकी मदद हम ले सकते हैं। जहाँ आत्मतत्त्व को कमी मालूम हुई उसकी पूर्ति के लिए परमेश्वर तत्त्व से मदद मिलती है। बुद्धि-तत्त्व में जहाँ कमजोरी आती है वहाँ बाह्य सृष्टि में जो बुद्धि-तत्त्व है उसकी मदद हम लेते हैं और गुरु की बुद्धि के जरिये ग्रन्थ के जरिये बाहर की बुद्धि की मदद हम लेते हैं। उसी तरह जहाँ आत्मा में बहुत ज्यादा कमजोरी महसूस करते हैं, वहाँ परमेश्वर से याने सृष्टि में जो तत्त्व है जिसके प्रतिबिंब-स्वरूप यह आत्मा है वहाँ से हम मदद ले सकते हैं। वहाँ परमेश्वर की कृपा का स्थान आया। परमेश्वर का स्वरूप यह है कि वह ब्रह्मांडधारी है जैसे हम शरीरधारी हैं। और जैसे हम देह-भिन्न हैं वैसे वह ब्रह्मांड-भिन्न है। जैसे हम देह को पहचाननेवाले हैं वैसे वह ब्रह्मांड को पहचाननेवाला एक है। वह परमेश्वर है। उससे हमें मदद मिल सकती है। अब वह मदद अगर मिलेगी और स्मृतियाँ सब खत्म होंगी और शुभ-स्मृतियाँ आत्म-स्मृति में डूब जायेंगी तब आत्म स्मृति जागेगी और तब ब्रह्म निर्वाण होगा। और ब्रह्म में आत्मा लीन हो जायगी। केवल निर्वाण हो जायगा यह गलत बौद्धों ने कहा। स्थितप्रज्ञ-दर्शन की

पुस्तक के आखिर में ब्रह्म-निर्वाण का आधार लेकर बौद्ध और वैदों का समन्वय किया है। उसके लिए एक नया श्लोक गीता की परिभाषा में बनाया है। 'शून्यं ब्रह्म च शून्यं च यः पश्यति स पश्यति।' जो शून्य और ब्रह्म एक है ऐसा देखता है वही सही देखता है। ऐसा एक श्लोक हमने बनाया और वहाँ स्थितप्रज्ञ-दर्शन किताब समाप्त होती है।

जीवनसूत्र—धर्मसमन्वय

बौद्धधर्म शून्यवादी है गीता ब्रह्मवादी। लेकिन शून्य और ब्रह्म में फर्क नहीं है। जहाँ कुस्मृतियाँ और अशुभ स्मृतियाँ समाप्त होती हैं वहाँ आत्मस्मृति जागती है और जहाँ शुभ-स्मृतियाँ खत्म होती हैं इसी को बौद्ध शून्य कहते हैं। और यह कहता है जहाँ आत्म-स्मृति जागेगी वहाँ अन्य स्मृतियाँ खतम होंगी। यह ब्रह्म का नाम लेता है पॉजिटिव भावात्मक भाषा बोलता है। वह अभावात्मक भाषा बोलता है। अन्धकार का मिटना और प्रकाश का आना दोनों अलग अलग नहीं है। एक कहता है अन्धेरा मिट गया दूसरा कहता है उजाला हो गया। अन्धेरा मिट गया एक पक्ष उजाला हो गया दूसरा पक्ष। दोनों पक्षों का वाद चला—अन्धेरा मिट गया कि उजाला हो गया? यह वाद कैसे मिटेगा? दोनों एक ही हैं यों कहने से ही मिटेगा और किसी दूसरे तरीके से नहीं मिटेगा। इसलिए हम ब्रह्म-निर्वाण कहते हैं और बौद्ध निर्वाण कहते हैं। तो शून्य और ब्रह्म यानी अन्धेरा मिटा और उजाला हो गया यह समन्वय का विचार हमने रखा। इस समन्वय की जरूरत हमने सतत महसूस की है। 'स्थितप्रज्ञ-दर्शन' पुस्तक के अन्त में यह लिखा है यह हमें याद नहीं था हमारे मित्रों ने याद दिलाया। स्थितप्रज्ञ दर्शन के पहले एक किताब लिखी थी, जब हम बचपन थे। यह हमारा प्रथम लेखन है—'उपनिषदों का अध्ययन'। यह अत्यन्त कठिन ग्रंथ है फिर भी बहुत गहरा है। जब वह नये सिरे से

प्रकाशित हुआ तो उसे हमने दुबारा पढ़ लिया। उसमें खास फर्क करने की जरूरत नहीं महसूस हुई। आज अगर वह लिखी जाती तो उतनी कठिन नहीं लिखी जाती। लेकिन हमारे विचार में कोई फर्क नहीं हुआ। वह हमारी पहली किताब है। बुद्ध भगवान का उपनिषद् के अध्ययन के साथ वास्तव में कोई ताल्लुक नहीं है। लेकिन उस पुस्तक की समाप्ति धम्मपद से वचन लेकर की है। उसी तरह स्थितप्रज्ञ-दर्शन में भी हमने बौद्धों का और वेदों के समन्वय का विचार रखा है। 'उपनिषदों का अध्ययन' किताब सन् १९२१ की है और स्थितप्रज्ञ दर्शन किताब सन् १९४५ की। जेल में हमारे व्याख्यान हुए थे। जेल में ही 'रिकार्ड' किया गया और किताब भी जेल में ही बनी। उसमें स्थितप्रज्ञ-दर्शन की समाप्ति बौद्ध और वेदान्त के समन्वय के विचार से की। फिर जब हम गया जिले में घूमते थे तब गौतम बुद्ध की स्मृति मन में रहती थी। हमने वहाँ समन्वयाश्रम की स्थापना की। सन् १९२१ से लेकर १९४५ तक एक विचार हमारा हुआ जिसमें बौद्धों का हमें सतत स्मरण रहा। बाद में भूदान शुरू हुआ और उसमें समन्वयाश्रम बना। उसके बाद गौतम बुद्ध के धम्म-पद का रचनान्तर हमने किया। धम्मपद के श्लोक सुभाषित जैसे हैं। क्रम का खास आधार नहीं है ४२ श्लोक हैं। उन्हें हमने १८ अध्याय और १ प्रकरणों में बाँटा। हरएक प्रकरण और अध्याय को नाम दिया और अन्त में कुछ शब्दों की सूची दी जो अभी तक कहीं भी नहीं बनी थी। शुरू में हमने जो प्रस्तावना लिखी है वह आपके काम की नहीं है क्योंकि उसमें रचनान्तर है लेकिन श्लोकों का तर्जुमा नहीं किया है। वह दिया जाता तो वह आम लोगों के काम की चीज होती। आज वह विद्वानों के काम की चीज है। सन् १९२१ से लेकर १९५ तक सतत यह विचार मन में रहा कि वेदान्त और बौद्ध-दर्शन का समन्वय होना चाहिए। बौद्ध दर्शन से मेरा मतलब जितने भी दर्शन हिन्दुस्तान में साधना के विषय में सोचते हैं परमेश्वर को अलग रखकर, वे कुल दर्शन एक ओर और परमेश्वर की मदद अनिवार्य समझकर जो दूसरे दर्शन

बने हैं, वे दूसरी ओर। एक को आस्तिक कहते हैं दूसरे को नास्तिक। लेकिन इसे हम अन्याय समझते हैं। यह आस्तिक या नास्तिक नहीं है। एक आत्म-प्रयत्नवादी है, दूसरा आत्म-प्रयत्न की जहाँ पराकाष्ठा होती है वहाँ अन्त के लिए ईश्वर की अपेक्षा रखनेवाला है। दोनों पूरे प्रयत्न वादी हैं परन्तु एक प्रयत्नवाद में ही समाप्त करता है और दूसरा प्रयत्न वाद के अन्त में परमात्मा की कृपा की कामना की बात करता है। इस तरह ये दो दर्शन हैं। एक आत्मा पर निर्भर है दूसरा परमेश्वर की कृपा का आवाहन करनेवाला। दोनों दर्शनों का समन्वय होना चाहिए। तभी समाधान होगा तत्त्वज्ञान का और तभी समाधान होगा जीवन-विचार का। इसलिए जितने ग्रंथ हमने लिखे हैं उनमें वाद-समाप्ति है। गीता-प्रवचन की तुलना नजदीक-से नजदीक ग्रंथ के साथ कीजिये। गीता-रहस्य या शंकराचार्य के भाष्य से आप तुलना कर सकते हैं। आप देखेंगे कि दोनों ग्रन्थों में वाद है और एक पक्ष में वजन ज्यादा है, ऐसा दीखता है। एक ने कर्म-पक्ष में वजन ज्यादा है दूसरे ने ज्ञान पक्ष में वजन डाला है। इस तरह भाष्य लिखे हैं लेकिन गीता-प्रवचन में जितना वाद है उनका समन्वय हो सकता है यह दिखाया है।

हमारा आखिरी ग्रन्थ है 'साम्यसूत्र'। संस्कृत में है। उसमें हमने एक सूत्र लिखा है 'शुक-जनकयोः एकः पन्था'—शुक और जनक का मार्ग एक है। यही वो व्यक्तित्व लेकर 'गीता-रहस्य' में झगड़ा पेश किया गया है। शुक आदि इस मार्ग से गये—संन्यास-मार्ग से और जनकादि उस मार्ग से गये—कर्मयोग के मार्ग से। यों दिखाकर दोनों में वाद खड़ा किया है दोनों अलग-अलग मार्ग हैं ऐसा कहकर संन्यास मार्ग से कर्म-मार्ग श्रेष्ठ है ऐसा बताया है लेकिन 'साम्यसूत्र' में हमने दोनों मार्ग एक ही हैं यह बताया है। यह विशेष वस्तु है। शुक और जनक का रास्ता एक ही है हमारा रास्ता अलग है। उनके रास्ते में फर्क नहीं। हमारा रास्ता उन दोनों से बहुत अलग पड़ा है

यह जरा हम देख ले। एक-एक की एकता जब हम ध्यान में लेंगे तभी गीता का रहस्य हमारे हाथ आयेगा। साम्यसूत्र में हमने यही दिखाया है।

साम्योपासना

हमारे चिन्तन का तरीका समन्वय का है। अन्त में हम साम्य की भाषा रखते हैं। हम समन्वय-पद्धति से सोचते हैं और उसके नतीजे में, अन्त में, हमें जरूरत है साम्य की। इसलिए गीता को हमने 'साम्ययोग' नाम दिया। कोई कहता है, गीता कर्मयोग है, कोई ध्यानयोग कहता है कोई ज्ञानयोग कहता है। लोकमान्य ने उसे कर्मयोग कहा गांधीजी ने उसे अनासक्ति-योग कहा। ये सब नाम सही हैं अपने-अपने विचार में। लेकिन हमने गीता को 'साम्ययोग' नाम दिया। गीता में यह शब्द आया है। वैसे कर्मयोग और ध्यानयोग के शब्द भी गीता में आये हैं। और वैसे गीता का आधार कुछ नामों के लिए है। लेकिन हमने गीता में जो शब्द आया है उसके आधार पर 'साम्ययोग' ही गीता को अन्त में माना है। अन्तिम करना साम्ययोग है। 'अभिधेयं परम-साम्यम्।' प्राप्तव्य वस्तु साम्ययोग है। साम्ययोग हमने अन्तिम माना है और समन्वय को हम अपनी चिंतन की पद्धति बनाना चाहते हैं। समन्वय-पद्धति से हम साम्ययोग तक पहुँचें यह हमारे उपासन की चर्चा में रही है। जितने भी हमने ग्रंथ लिखे, छोटे-बड़े, उनमें पद्धति समन्वय की और अन्तिम लक्ष्य साम्ययोग का है। हमारा जो दार्शनिक साहित्य है उसमें साम्ययोग परिणत है और समन्वय पद्धति है।

इन्दौर —प्रातःकालीन कार्यकर्ता-वर्ग में
१२-८-६

१३

श्रीकृष्ण-स्मरण

आज हम यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण के जन्म-दिवस पर एकत्र हुए हैं। भगवान् कृष्ण हिन्दुस्तान के परमप्यारे हैं। पूज्य तो वे हैं ही प्यारे भी हैं। कुछ लोग पूज्य होते हैं कुछ प्यारे होते हैं। लेकिन भगवान् श्रीकृष्ण हमारे लिए परमपूज्य हैं और परमप्रिय हैं। हम कह नहीं सकते कि वे हमको कितने प्रिय हैं।

पूज्य और प्रिय की सांत्वना

हमारे एक मित्र थे। उनको बहुत भारी बीमारी हुई थी। नींद अच्छी नहीं आती थी। बहुत सपने पड़ते थे। बीमारी से ठीक होने के बाद हमसे मिले और कहने लगे, 'हम आपके—याने विनोबा के—और महात्मा गांधीजी के विचार के प्रेमी हैं और आपके ही विचार पर कुछ अमल करने की सतत कोशिश करते हैं। आप दोनों की संगति भी हम मिली है लेकिन बीमारी में भी जो स्वप्न पड़े उन स्वप्नों में न गांधीजी याद आये न आप याद आये, हमारी पत्नी जो हमारी परमप्रिय है और हमारे बच्चे जो हम परमप्रिय हैं वे भी याद नहीं आये और हम याद आयी हमारी माता। इसकी क्या वजह है?" हमने कहा, "आप एक ऐसे दुःख में थे कि जिसमें आपको सान्त्वना की जरूरत थी। आपकी पत्नी और आपके बच्चे आपको क्या सान्त्वना दे सकते थे? आप ही उनको हमेशा सान्त्वना देनेवाले रहे हैं। वे आपको मार्गदर्शन नहीं दे सकते थे। वे सिर्फ प्यारे थे। हम और गांधीजी आपके पूज्य थे। आपने हमें पूज्य माना था। विशेष विचार के प्रसंगों में हमारी सलाह आपको

मिलती थी। लेकिन आप सिर्फ आध्यात्मिक संकट में नहीं थे शारीरिक संकट में भी थे। सिर्फ आध्यात्मिक संकट होता तो आप हमें याद करते। लेकिन संकट शारीरिक था इसलिए जो पूज्य थे उनका स्मरण नहीं हुआ और जो प्रिय थे उनका स्मरण नहीं हुआ जो पूज्य और प्रिय दोनों थे, उनका स्मरण हुआ।"

हिन्दुस्तान के कुछ लोग 'राजद्रोही'

भगवान श्रीकृष्ण हमारे लिए दोनों हैं। वे परमपूज्य हैं। उनसे बढ़कर हमारे लिए कोई पूज्य नहीं है। उनकी बराबरी के रामचंद्र हो सकते हैं। उनसे बढ़कर हमें कोई मित्र नहीं। संभव है कुछ अंशों में रामचन्द्र भी बराबरी करें। मैंने जान-बूझकर 'कुछ अंशों में' कहा। वे पूज्य थे परमपूज्य थे फिर भी राम स्वामी और हम उनके दास। राजा राम। हिन्दुस्तान में इतने राजा हुए, हम किसीका स्मरण नहीं करते। अपने-अपने जमाने में सब हुए गरजते रहे और कुछ पराक्रम भी शायद उन्होंने लोगों का किया और जमाया भी बहुत था लेकिन हमने उन राजाओं में से किसीको राजा नहीं समझा। हम तो सिर्फ राजा राम को जानते हैं। दूसरा राजा हम नहीं मानते। पुराने जमाने की बात है—१९१ और १९११ की जिक्र देखो उधर राजद्रोह के केस चलते थे। हम उन दिनों बच्चे थे और ऐसी मीटिंग में बोलने का मुझे बचपन से मौका आता था। एक मीटिंग में मैंने कहा कि हिन्दुस्तान के हम कुछ लोग राजद्रोही हैं। क्योंकि रामजी के सिवा हम किसीको राजा नहीं मानते। इसलिए अब किनको ढूंढते हो राजद्रोही के नाम पर। राम हमारे ऐसे अद्वितीय राजा हो गये कि उन्होंने बन्दरों से वानरों से काम किया। माइयों से सेवा ली। सेवकों से सेवा ली। सबकी सेवा ली और सबका गौरव किया।

तुलसी कहुँ नहीं राम सो साहिब सील-निधान

मैं बहुत बार याद करता हूँ तुलसीदास ने वर्णन किया 'प्रभु

तरुतल कपि डार पर ते किये आप समान। वे बैठते थे पेड़ पर, ऐसे बेवकूफ बन्दर कि किसकी कैसी इज्जत करना जानते नहीं थे। प्रभु पेड़ के नीचे बैठते थे और ये पेड़ के ऊपर। लेकिन ते किये आप समान—उनको अपने समान बनाया। 'तुलसी कहूँ नहीं राम सो साहिब सील-निधान। ऐसा स्वामी ऐसा साहिब! बिल्कुल अविनयी उद्धत अज्ञ-मूढ़ जीवों की इज्जत करनेवाला! उनसे प्यार से सेवा लेने वाला! तुलसीदासजी कहते हैं राम को छोड़कर दूसरा साहिब नहीं हुआ। तुलसी कहूँ नहीं राम सो साहिब शीलनिधान। इसलिए हम रामराज्य का वर्णन करते हैं कि जो भी हमारी कल्पना में सर्वोत्तम राज्य होगा उसे हम रामराज्य नाम देते हैं।

तुलसी कहूँ नहीं कृष्ण सा सेवक शील-निधान

लेकिन मेरी माँ कहती थी रामचन्द्र सेवा लेते-लेते ऊब गये। किसकी सेवा उन्होंने नहीं ली! सबकी सेवा ली प्यार से ली। सबको समान बनाकर सेवा ली। रामजी ऊब गये। माँ कहती थी कि रामजी ने नया अवतार लिया कृष्ण का और कसम खायी कि अब हम किसीकी सेवा नहीं लेंगे सबकी सेवा करेंगे। कृष्ण ने घोड़ों की सेवा की गायों की सेवा की। रामजी ने बन्दरों से सेवा ली रीछों से सेवा ली। दूसरे अवतार में घोड़ों की सेवा की और ग्वाल बनकर सेवक बने। माँ कहती थी रामजी बड़े भाई थे। उन्होंने सेवा ली। दूसरे अवतार में वे छोटे भाई बने क्योंकि उनको सेवा करनी थी।

निरपेक्ष सेवा

युधिष्ठिर के मस्तक पर राज्याभिषेक किया और अपने सिर के मस्तक पर कभी राज्याभिषेक नहीं होने दिया। कंस-मुक्ति के बाद अपने हाथ में राज्य नहीं लिया उग्रसेन को सौंप। द्वारका चले गये तो खुद राजा नहीं बने, बलराम को राजा बनाया। श्रीकृष्ण अर्जुन के सारथी बने। रामजी ने उनसे सेवा ली। और क्या किसीको मालूम थी कि रामजी ने

मेवा छेवा आर उनसे कहता कि यरा मोटर चलानी है आप हमारे शोफर बनिये। क्या कोई कह सकता था। उनका अपना एक स्थान था लेकिन अर्जुन कृष्ण से कहता है तू मेरे रथ का सारथी बनेगा। मोटर का शोफर बनेगा? तो कहते हैं, 'जी हा। क्रि वचन करता है, अर्जुन क्षत्रिय था लेकिन कृष्ण भी कुल के नाते क्षत्रिय था। उसने सेवा की शूद्र का भी काम किया। उन दिनों एक रिवाज था कि—शाम को लड़ाई बन्द होती थी। लड़ाई बन्द होने पर अर्जुन संध्या पासना के लिए जाता था और भगवान् कृष्ण घोड़ों की सेवा करने जाते थे। घोड़ों के शरीर में बाण लगे हुए रहते थे। उनको निकालना नहलाना मरहम करना।

सेवा ही संध्या

सेवा ही उनकी सन्ध्या थी। आखिर युद्ध की समाप्ति पर युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ किया। उस यज्ञ में भिन्न भिन्न लोगों को तरह-तरह के काम सौंप दिये—बड़े लोगों को और छोटे लोगों को भी। श्रीकृष्ण आये और काम माँगने लगे। युधिष्ठिर ने कहा आपको हम क्या काम दे सकते हैं? बोले "आप नहीं देंगे, तो मैं ढूँढ लूँगा।" "ढूँढ लीजिये।" और उन्होंने अपने लिए काम ढूँढ लिया। भोजन के लिए लोग बैठते थे, उनकी पत्तलें उठाने का और भूमि को गोबर से लीपने का काम ले लिया। इसलिए तुलसीदासजी के शब्द का उपयोग करके मैं कहूँगा तो तुलसीदासजी मुझे क्षमा करेंगे और मान्य भी करेंगे—'तुलसी कहूँ' नहीं कृष्ण सो सेवक हित-निधान। हम कभी राजा को सेवक नहीं कहते हैं बल्कि राजराजेश्वर कहते हैं। अभी हमारे एक भाई ने यहाँ कहा कि कृष्ण योग-योगेश्वर थे। लेकिन अपना स्थान उन्होंने सेवक का माना और सबसे बड़ी बात यह कि लोगों ने उनका स्थान सेवक का माना। जब-जब सेवा श्रेणी की तब कृष्ण ने सेवा की बिना संकोच के की। इसलिए सारा भारत गोपाल-कृष्ण का नाम स्मरण करता है। गायों को चरानेवाले गो-सेवक श्रीकृष्ण।

प्रेम-मूर्ति कृष्ण

जब कोई बचानेवाला नहीं मिलता, पति-देवता भी असमर्थ साबित हुए जनता मूक है, पब्लिक ओपीनियन बोल नहीं रहा वह है मूक है और पब्लिक ओपीनियन के जो बड़े-बड़े नेता भीष्म द्रोण विदुर कुछ बोल नहीं रहे हैं। सूरदास कह रहा है 'भीष्म द्रोण विदुर भये विस्मित।' वह पूछ रही है 'क्या द्यूत में स्वयं को जुए हारने पर पत्नी को दाँव पर लगाया जा सकता है।' यह सवाल वहाँ बड़ा पेचीदा हो रहा है। आज का बच्चा भी जवाब देगा कि यह गलत है। लेकिन उस जमाने के अत्यन्त ज्ञानी भीष्म द्रोण विदुर—अत्यन्त ज्ञानी लेकिन समाज के रीति रिवाजों से जकड़े हुए, जीर्ण-जर्जर विचारों के दंभ दासों से जकड़े हुए समयवादी के गुलाम—ज्ञानी होने पर भी गुलाम—भीष्म द्रोण विदुर चुप हैं। बोल नहीं सके। ऐसे मौके पर द्रौपदी ने भगवान् को याद किया और कवि लिख रहा है कि भगवान् ने भक्तों की रक्षा के लिए दस-दस अवतार लिये हैं। कहते हैं एक अवतार लेना बाकी है लेकिन दस जाहिर हैं और ग्यारहवाँ अंबरावतार किया है। कपड़े का ही अवतार ले लिया। वे कपड़ा बने। जहाँ कोई काम नहीं आये वहाँ वे आये। आजकल बोला जाता है कि स्त्रियाँ अपनी रक्षा के लिए पिस्तौल रखें। द्रौपदी ने पिस्तौल नहीं रखी थी। उसने भगवत्-प्रेम रखा था। उस प्रेम के सामने दुःशासन की कुछ नहीं चली। सीतामाता ने भी प्रेम रखा था—भगवत् प्रेम सो रावण की कुछ नहीं चली। यह सेवा मूर्ति और प्रेम मूर्ति यह चित्र हमारे सामने श्रीकृष्ण ने खड़ा किया।

ज्ञान-मूर्ति

तीसरा चित्र जहाँ दोनों सेना के बीच रथ खड़ा किया है। उस जमाने का अद्वितीय वीर जिसने ... के प्रसंग में भीष्म द्रोण के भी छक्के छुड़ाये थे वह मोह कर रहा है मोहग्रस्त हो गया है—स्वजन परजन-भेद करके दलील करता है। दोनों बाजू स्वजन हैं मानो यह कहता है

जाकर पूछिये ज्ञानदेव से बढ़कर कोई नाम यहाँ नहीं है। दूसरा नाम तक नहीं जानते हैं। अत्यन्त नम्र होकर गीता का भाष्य में लिखते हैं। क्या कहते हैं। माझिया सत्यवादार्थे तप वाचा केले बहुत जन्म— अनेक जन्मों में सत्य बोलने की तपस्या मेरी वाणी ने की है। ध्यान देने लायक शब्द है। मामूली नहीं है। ज्ञानदेव महाराज बोल रहे हैं— मेरी वाणी ने सिर्फ इस जन्म में नहीं अनेक जन्मों में सत्य बोलने की तपस्या की है। कितने लोग ऐसे निकलेंगे, जो कहेंगे कि इस जन्म में भी हम झूठ नहीं बोले। माझिया सत्यवादार्थे तप वाचा केले बहुत जन्म और उसके परिणामस्वरूप गीता का भाष्य लिखने का भाग्य मुझे मिला ऐसा वे लिखते हैं।

शंकराचार्य

शंकराचार्य अपने जमाने में अद्वितीय थे। उनके भाष्यों पर अर्संख्य प्रहार हुए। परन्तु जैसे भीम को बकासुर घूँसे मारता रहा और वह खाना खाता रहा उसने परवाह नहीं की हँसता रहा। उसने कहा, मारो मेरा व्यायाम होगा। खा रहा हूँ, यह हजम हो जायगा। फिर देखेंगा। उसी तरह जितने प्रहार शंकराचार्य पर हुए, उतना उनका शरीर मजबूत ही हुआ। आज भी जो तत्त्वज्ञान उन्होंने भारत को दिया है उसके सिवा दूसरे किसी तत्त्वज्ञान का असर भारत पर नहीं है। हमारा अमन्य दूरा दृश्य है। कहाँ अद्वैत और कहाँ हम। लेकिन हमारी श्रद्धा अद्वैत पर है।

हमारा अयोग्य आचरण

आज ही एक घटना घटी। बड़ी दुःखद घटना है। यहाँ आने के पहले एक जगह हम गये थे। इन दो स्थानों में पाँच मिनट का अन्तर था। हमने वहाँ कहा कि यहाँ हम कुरान के बारे में बोलनेवाले हैं। तो यहाँ के लोग यहाँ क्यों न आयें? और एक ही सभा क्यों न हो? सामने लड़कियाँ बैठी थीं। बोलीं 'हाँ एक सभा होनी चाहिए। फिर हमने

मुझीसे पूछा कि एक ही सभा क्यों न होनी चाहिए ? तब कार्यकर्त्ताओं ने कहा कि 'हाँ एक ही सभा होनी चाहिए।' फिर हमने कहा 'एक ही सभा हो तो वहाँ हम बोलेंगे।' 'यहाँ क्यों बोलेंगे ?' तब सभा में एक भाई खड़े होकर बोले कि 'वहाँ पार्टीबाजी है इसलिए यहाँ के लोग वहाँ नहीं आयेंगे।' मैंने कहा 'तो मैं आपको भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ। पार्टीबाजी के कारण आप लोग नहीं आना चाहेंगे तो मत आइये। नमस्कार है आपको। जो वहाँ आना चाहें, वे आ सकते हैं।' और मैं वहाँ से चला आया। अब यह पार्टीबाजी ! एक पुरुष का आप आदर करते हैं। पूज्य आप आदरणीय मानते हैं। भगवान श्रीकृष्ण के लिए परम आदर आपके मन में है। लेकिन आप उसकी भी कीमत नहीं करते और इसकी भी कीमत नहीं करते। आप सुनाते हैं कि पार्टीबाजी है इसलिए वहाँ नहीं आयेंगे। क्या अद्वैत का विचार करना यहाँ इसके कोई मानी है ?

यही लोग कहते हैं भारत के अपने ही लोग कि अगर हिंदुस्तान पर चीन का हमला होगा तो हम सब एक होंगे। अरे कम्बख्तो एक होने के लिए क्या हमले की जरूरत है ? सोचने की बात है। हम बिल्कुल नालायक हैं। अद्वैत के लिए कोई योग्यता हमारी नहीं है।

शंकराचार्य की महत्ता

फिर भी आज भारत पर किसी तत्त्वज्ञान का प्रभाव है, तो वह शंकर के तत्त्वज्ञान का है। उस जमाने के वे कितने पराक्रमी पुरुष थे। हम सोचते हैं वे तत्त्वज्ञानी थे, महाकवि थे, ब्रह्मचारी थे योगी भी थे संन्यासी भी थे और परिश्रम कितना करते थे ! सारे भारत में पैदल-पैदल घूमे। लोग कहते हैं कि बाबा पैदल घूम रहा है लेकिन शंकराचार्य ऐसे जमाने में घूमे, जिसमें रास्ते अच्छे नहीं थे। क्या उनके आगे-पीछे मोटर चलती थी ? उस जमाने का आठ साल का लड़का पैदल पैदल निकलता है और कश्मीर तक पहुँचता है। हम श्रीनगर पहुँचे थे। वहाँ शंकराचार्य

दिया। इसीके आधार पर हम भगवान् कृष्ण की वंदना करते हैं। 'कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्' ऐसी संज्ञा देते हैं। हम सोचते हैं कि हिन्दुस्थान का उद्धार करनेवाली सबसे बड़ी कौन चीज है? श्रीकृष्ण की गीता और रामजी का नाम—ये दो चीजें हैं जिनकी बराबरी की कोई तीसरी चीज नहीं मिलेगी। रामजी ने बहुत उपदेश नहीं किया। वे मर्यादा पुरुषोत्तम थे। वे कहते थे, हमारे वेद-भगवान् ने मर्यादा बतायी है, इसलिए मुझे क्या बताना है? मुझे ज्यादा कुछ कहना नहीं है। मुझे तो उस पर अमल करना है।" इसलिए उन्होंने मर्यादा दिखायी उपदेश नहीं दिया है। एक मौके पर उपदेश दिया है। तुलसीदासजी वर्णन करते हैं, एक बार प्रभु सुख आसीना एक बक्त जगल में सहजते हुए आनन्द एकान्त में शान्त स्थान में प्रसन्न चित्त से प्रभु बैठे थे। सुखमय अवस्था में बैठे थे। लक्ष्मण कहे वचन छलहीना। उस वक्त लक्ष्मण ने सवाल पूछा और उसका जवाब रामजी ने दिया है जो तुलसीदासजी ने देव ग्रह में लिखा है। वही एक प्रसंग है, जिस समय उन्होंने कुछ उपदेश दिया। लक्ष्मण निरंतर उनके साथ रहते थे, लेकिन कभी प्रश्न पूछा नहीं था। वे देखते थे कि प्रभु कैसे बैठते हैं कैसे बोलते हैं—किमासीत किं प्रभाषेत? लेकिन लक्ष्मण ने एक बार सवाल पूछा। आजकल तो प्रश्न पूछ लिये जाते हैं। न सेवा है न नमति न सत्र। अखबार वाले जाते हैं और प्रश्न पूछते हैं जैसे कोई मुजरिम हो। सर पर प्रश्नों का प्रहार करते हैं और उनके जवाब भी उनको चाहिए। लेकिन लक्ष्मण की हिम्मत नहीं हुई थी। बारह साल की भाषा में साथ रहा सेवा की और इतने तन्मय हो गये रामजी में लक्ष्मण। तुलसीदासजी वर्णन करते हैं लक्ष्मण का। धन्य हैं लक्ष्मणजी! रघुपति कीरति विमल पताका। दंड समान भयउ जस जाका। रामजी की यशोध्वजा के लिए, पताका खड़े के लिए लक्ष्मणजी डंडे के समान थे। झंडा ऊँचा रहे हमारा' 'झंडा ऊँचा रहे' ऐसा सब कहते हैं। लेकिन 'झंडा ऊँचा रहे हमारा' यह कौन कहता है? कोई नहीं कहता। नाम

के नाम का एक पहाड़ है। वहाँ—पहाड़ पर—शंकराचार्य समाधि लगाते थे, ऐसी कहानी लोग सुनाते थे। वे कहते थे कि शंकराचार्य के बाद आप आये हैं। मैंने कहा 'दूसरे भी आये थे, लेकिन व्यापक धर्मकार्य लेकर नहीं आये थे।' मेरा कार्य व्यापक धर्मकार्य इन लोगों ने मान लिया और शंकराचार्य का स्मरण करके मैंने कहा आप मेरा बहुत आदर कर रहे हैं, जिसके लिए कोई योग्यता मैं अपने में नहीं देखता हूँ।

गर्जना करनेवाले गीता के सामने नम्र बने

ब्रह्मसूत्र का भाष्य करते हुए शंकराचार्य कहते हैं 'वयं ब्रूमः। वयं तावत्' हम बोलते हैं हम कहते हैं ऐसी गर्जना करते हैं लेकिन जहाँ गीता पर भाष्य करने का प्रसंग आया वहाँ कहते हैं उस गीता के आविष्कार का मुझसे यत्न किया जा रहा है। कर्मणि प्रयोग कर्तरि प्रयोग में नहीं। 'वयं ब्रूमः'। हम बोलते हैं हम आपसे पूछते हैं इस तरह गर्जना करनेवाले पाण्डित्य की और प्रखर ज्ञान की भाषा वे जो बोलते हैं। वह सबकी सब भाषा वहाँ खत्म है जहाँ गीता के सामने वे खड़े हैं। कहते हैं कि गीताशास्त्र अत्यन्त गहन है। अनेकों ने इसका विवरण किया फिर पर भी वह अर्थ अभी दुर्गम ही रह गया। इसलिए उसके अर्थ के प्रकाशन के लिए मेरे द्वारा प्रयत्न किया जा रहा है। इतने नम्र हो गये!

रामानुज

रामानुज कोई सामान्य पुरुष नहीं थे। हमारे बड़े उत्तमोत्तम ज्ञानी परमज्ञानी भी परम भक्त माने जाते हैं और जो हमारे लिए आचार्य हैं तुलसीदास। और कबीर भी रामानुज के शिष्य थे। वह इतना प्रभाव उनका [illegible] था। सबका मन उनके संप्रदाय में थे। वे गीता के [illegible] थे।

गांधी : भारतीय नेता

इस जमाने में महात्मा गांधी, तिलक, अरविंद ये नेता थे—हिंदुस्तान के बहुत बड़े नेता। उनको अपने नेतृत्व में ताकत की कमी मालूम हुई, तो गीता का आवाहन करके ताकत प्राप्त की। खैर! नेताओं को नित्य निरन्तर प्रेरणा देनेवाली भगवद्-गीता!

गीता नित्य-नूतन

ज्ञानदेव महाराज ने ज्ञानेश्वरी में पार्वती-परमेश्वर संवाद दिया है। गीता का स्वरूप-वर्णन वे कर रहे हैं। 'जैसें हर म्हणे नेणिजे। देवी जैसें का स्वरूप तुझें। तैसें हें नित्य नूतन देखिजे गीतातत्त्व।' हे देवी, हे मायादेवी पार्वती मायादेवी! जैसे तेरे स्वरूप का निर्णय हो नहीं सकता उसी तरह यह गीता-तत्त्व नित्य-नूतन है। माया का स्वरूप क्या कहा जायगा? वह बदलता रहता है। हजारों रूप माया लेती है 'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते' इंद्र माया के कारण अलग-अलग रूप धारण करता है। सहस्र सहस्र अनंत-अनंत रूपधारिणी माया— वैसे गीतातत्त्व नित्य-नूतन है। 'तैसें हें नित्य-नूतन देखिजे' गीता-तत्त्व। गीता का रूप नित्य-नूतन है। इसलिए किसीका गीता को कर्मयोग शास्त्र कहना किसीका ज्ञानयोग शास्त्र कहना इत्यादि सब फिजूल बात हैं। गीता वह शास्त्र है जो आप चाहते हैं। जब आपके लिए जिस शास्त्र की जरूरत होगी वह शास्त्र गीता आपके लिए तब बनेगा। आज आपके लिए जैसा आप चाहते हैं वैसा गीताशास्त्र बनेगा। "नित्य-नूतन है गीता तत्त्व" ज्ञानदेव महाराज ने कहा। मैं मानता हूँ गीता को लोक-प्रिय बनाने में ज्यादा-से-ज्यादा काम किन्होंने किया है तो वह ज्ञानदेव महाराज ने किया है। उनके कारण गीता घर-घर में पहुँच गयी। इतनी लोक-प्रिय भाषा में उन्होंने सब लिखा अपने अनुभव के साथ। इस जमाने के नेताओं का जिक्र मैं कर चुका।

रामजी का नाम और कृष्ण की गीता

इतना परम दिव्य, परम ज्ञान अर्जुन के निमित्त से भगवान् ने

दिया। इसीके आधार पर हम भगवान् कृष्ण की वंदना करते हैं। 'कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्' ऐसी संज्ञा देते हैं। हम सोचते हैं कि हिन्दुस्तान का उद्धार करनेवाली सबसे बड़ी कौन चीजें हैं? श्रीकृष्ण की गीता और रामजी का नाम—ये दो चीजें हैं जिनकी बराबरी की कोई दूसरी चीज नहीं मिलेगी। रामजी ने बहुत उपदेश नहीं दिया, वे मर्यादा-पुरुषोत्तम थे। वे कहते थे, हमारे वेद-भगवान् ने मर्यादा बतायी है इसलिए मुझे क्या बताना है? मुझे ज्यादा कुछ कहना नहीं है। मुझे तो उस पर अमल करना है। इसलिए उन्होंने मर्यादा दिखायी उपदेश नहीं दिया है। एक मौके पर उपदेश दिया है। तुलसीदासजी वर्णन करते हैं 'एक बार प्रभु सुख आसीना' एक वक्त जंगल में भटकते हुए अत्यन्त एकान्त में, शान्त स्थान में प्रसन्न चित्त से प्रभु बैठे थे। सुखमय अवस्था में बैठे थे। लक्ष्मण कहे वचन अमायीना। उस वक्त लक्ष्मण ने प्रश्न पूछा और उसका जवाब रामजी ने दिया है जो तुलसीदासजी ने थोड़े में किया है। यही एक प्रसंग है जिस समय उन्होंने कुछ उपदेश दिया। लक्ष्मण निरंतर उनके साथ रहते थे, लेकिन कभी प्रश्न पूछा नहीं था। वे देखते थे कि प्रभु कैसे बैठते हैं कैसे बोलते हैं—स्थितप्रज्ञ कि प्रभाषेत? लेकिन लक्ष्मण ने एक बार सवाल पूछा। आजकल तो प्रश्न पूछे जाते हैं। न संख्या है न समाप्ति न क्रम। बारम्बार सामने आते हैं और प्रश्न पूछते हैं जैसे कोई मुलजिम हो। सब तरह प्रश्नों का प्रहार करते हैं और उनके जवाब भी उनको चाहिए। लेकिन लक्ष्मण की हिम्मत नहीं हुई थी। बारह साल की यात्रा में साथ रहा सेवा की और इतने तन्मय हो गये रामजी में लक्ष्मण। तुलसीदासजी वर्णन करते हैं लक्ष्मण का। धन्य हैं लक्ष्मणजी। रघुपति कीरति विमल पताका। दंड समान भयउ जस जाका। रामजी की [illegible] ध्वजा के लिए भगवान्की तार के लिए लक्ष्मणजी डंडे के समान थे। झंडा ऊँचा हमारा 'झंडा ऊँचा रहे' ऐसा हम कहते हैं। लेकिन डंडा ऊँचा रह रहा। यह कौन करता है? कोई नहीं करता। नाम

झंडे का, काम डंडे का। बिना डंडे के झंडा होगा ऊपर? जब डंडा खड़ा होता है तब उसके सिर पर झंडा फहराता है। डंडे का नाम नहीं पर वो सेवा कर रहा है। नाम झंडे का। रामजी का नाम लक्ष्मण का नाम नहीं। रामजी का यश झंडे के समान और लक्ष्मण का यश डंडे के समान। ऐसा तुलसीदासजी लिखते हैं। अद्भुत हैं तुलसीदासजी। लक्ष्मण भी अद्भुत, रामजी भी अद्भुत और हम भी अद्भुत, जिनको यह भाग्य हासिल हुआ है। एक बार ही रामजी को स्वभाव पूछा गया और वहीं रामजी ने उपदेश दिया और अन्त में जब वे राज्य छोड़कर चले गये थे तब दो-चार बातें बतायी थीं। उन्होंने ज्यादा उपदेश नहीं दिया। काम किया तो उनका नाम ही नाम चला। भगवान् कृष्ण ने गीता का उपदेश दिया तो वह उपदेश चला। ये दो चीजें हैं जो भारत की ताकत है और दुनिया अगर पहचाने तो दुनिया की ताकत है। भगवान् का नाम और कर्मयोग का उपदेश ये दो चीजें हैं।

अत्यन्त अनासक्त

आपके सामने भगवान् के तीन प्रसंग रखे। सेवामूर्ति, प्रेममूर्ति ज्ञानमूर्ति। चौथे प्रसंग का वर्णन करके मैं समाप्त करूँगा। कौरवों का संहार हुआ पाण्डवों का भी हुआ। पाँच पाण्डव इधर उधर बच गये। बचे विरथीर और भगवान् कृष्ण। बाकी सब मारे गये। बच्चे-बच्चे खत्म हुए। एकाध बच्चा रह गया। ऐसी हालत में गान्धारी से मिलने भगवान् जा रहे हैं। गान्धारी हमेशा आँखों पर बाँध रखती थी पट्टी। पति धृतराष्ट्र अन्धे थे। उनकी सहानुभूति में वह आँखों पर पट्टी बाँधती थी। बहुत शान्त और साध्वी थी। दुर्योधन की दुलार में कभी उसने उत्तेजन नहीं दिया। उसका पक्षपात केवल धर्म के लिए रहता था। उसके दर्शन के लिए प्रभु गये, युद्ध के अन्त में। उसके सौ के सौ लड़के मारे गये हैं। शान्त स्थित हुई थी और श्रीकृष्ण सामने खड़े हुए। उन्होंने नमस्कार किया। गान्धारी कहती है 'क्या यह सब तुमने करवाया'

पांडव गये कौरव गये, तो क्या यादव बचेंगे ! यानी शाप दिया श्रीकृष्ण हँसे और बोले यद् भावि तद् भविष्यति। जो होनेवाला है, वह होगा। इतने बेफिक्र थे।

राजा रविवर्मा ने कई अच्छी तसवीरें खींची हैं। उन सब सुन्दर तसवीरों में हमें जिस तसवीर ने खींचा वह तसवीर वही है जिसमें श्रीकृष्ण दरबार में बैठे हैं माँग की जा रही है पांडवों की तरफ से कि आधा राज्य तो दे दो। और कृष्ण इतने बेपरवाह वहाँ बैठे हैं। उस वक्त दुर्योधन गालियाँ दे रहा है धृतराष्ट्र मानो चुपचाप बैठा है, सुन रहा है। कुछ पक्षपात करने के लिए, कुछ धर्म-विचार की बात। दोनों में खींचातानी हो रही है और वह सुन रहा है। सारे क्षुब्ध हैं। सब के चेहरे क्षुब्ध दीखते हैं जहाँ सज्जनों को गालियाँ दी जा रही हैं। कृष्णजी कुर्सी पर बैठे हैं। उनके नजदीक सात्यकि बैठा है। वह एकदम खड़ा होता है और तलवार खींचकर आगे बढ़ना चाहता है। और उस हालत में भगवान् ऐसे बैठे हैं मानो कुछ भी नहीं हो रहा है। उनके चेहरे पर कोई भाव नहीं। सात्यकि का हाथ जरा पकड़ लिया उसे रोकने के लिए। वहाँ भी अत्यन्त अनासक्त और कह दिया 'यद् भावि तद् भविष्यति। आखिर जो होनेवाला है सो होगा।

परम समाधान्

आखिर में प्रसंग आया —यादव आपस में लड़ रहे हैं शराब पी रहे हैं यह उसे काट रहा है वह उसे काट रहे हैं। बलराम भी दुःखित होकर चले गये। भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ से दूर चले गये और एक वृक्ष के नीचे बैठे। इधर संहार चल रहा है और वे दूर चले गये। पेड़ के नीचे जाकर ध्यानस्थ बैठे घुटने पर पाँव रखा आराम से बैठे हैं। काफी धूप उनके शरीर पर पड़ी थी। उनके पाँव का आरक्त वर्ण देखकर दूर से एक व्याध ने समझा कि शायद हिरन होगा और उसने बाण मारा। खून की धारा बहने लगी। शिकार पकड़ने के लिए नजदीक आया तो देखा

भगवान् श्रीकृष्ण को उसने बाण मारा है। बहुत दुःखी हुआ। नजदीक पहुँचा। कृष्णजी बोल रहे हैं 'मा भीः जरे'। व्याध का नाम जरा था। हे जरे, 'मा भीः'। तूने मेरी इच्छा पूर्ण की। मुझे यह शरीर छोड़ना ही था। इसलिए तू सद्गति में जायगा। तुझे सद्गति प्राप्त होगी। अधोगति नहीं मिलेगी। व्याध बेचारा पश्चात्तापदग्ध था। परमेश्वर की कृपा उस पर हुई थी। उसे तो स्वर्ग जाना ही था, लेकिन एकनाथ महाराज कहते हैं कि प्रभु ने अन्तिम समय में हम भक्तों के लिए क्षमा का आदर्श दिखाया। परम क्षमा का दर्शन कराया।

ईसा-मसीह की कहानी है। उसे भी फाँसी पर लटकाया गया था। हाथ-पाँव बाँधे थे कीलें ठोकी थीं तीव्र वेदना हो रही थी। आखिर आदमी ही था! बोले Eli, Eli, lama Sabaktni

भाषा हिब्रू है। वचन है ओल्ड टेस्टामेंट में। वे भगवान् से कह रहे हैं कि 'हे भगवान् क्यों तूने मेरा त्याग किया! क्यों तू मुझे छोड़ रहा है! और एकदम याद आया ईसा-मसीह को कि भगवान् ने मुझे छोड़ा नहीं है भगवान् तो अन्तर्यामी बैठे हैं। वे छोड़ते नहीं! फिर कहा, "Thy will be done"—तेरी इच्छा जैसी होगी वैसा होगा और आखिर जिन्होंने उनको सजा दी उनके लिए कहा कि प्रभु उनको क्षमा करेगा क्योंकि They know not what they do—वे जानते नहीं, वे क्या कर रहे हैं। इसलिए हे प्रभो उनको क्षमा कर। ऐसा क्षमा का आदर्श ईसा ने दिखाया। ईसा से एक बार पूछा गया था कि कितनी बार क्षमा करनी चाहिए! उसने कहा था सात बार। फिर पूछा सात दफा भी क्षमा करने पर काम न हो तो! तो बोले—"Seven times seven"—उनचास बार। अब उसके आगे पूछने को कुछ रहा ही नहीं। याने जितनी दफा करनी पड़ेगी उतनी बार क्षमा ही किया करो—क्षमा शस्त्रं करे यस्य दुर्जनः किं करिष्यति? क्षमा ही तुम्हारा शस्त्र है। जहाँ हाथ में क्षमा का शस्त्र है वहाँ दुर्जन क्या करेगा! यह ईसा का बोध है और उसीके अनुसार ईसा का शरीर गिरा। ईसा-मसीह ने

कहा कि ये जानते नहीं कि ये क्या कर रहे हैं, इसलिए हे प्रभु इन्हें क्षमा कर। भगवान् कृष्ण ने कहा, 'मा भीः व्याध। तुम डरो मत मेरी इच्छा ही थी। तुम्हें सद्गति मिलेगी।' और उन्होंने अपने वध को प्रसन्नता से स्वीकार किया।

परम क्षमावान् आदर्श कृष्ण अर्थात् सेवामूर्ति प्रेममूर्ति, ज्ञानमूर्ति क्षमामूर्ति। ये चार प्रसंग हमेशा आँखों के सामने रहते हैं और याद आते हैं।[1]

इन्दौर　　श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर

१२-८-'६ [illegible]

---

१ यह प्रवचन करते-करते हर दो-तीन मिनट पर विनोबाजी का गला भर आता था। वाणी अवरुद्ध हो जाती थी। उनकी आँखों से आँसुओं की धारा भी प्रवचन-भर ही बहती रही।

. १४

भगवत्-स्मरणता की आवश्यकता

स्मृति कैसे काटें ?

साधकों के सामने दो समस्याएं रहती हैं (१) कुसंस्कार कैसे कटें और (२) सुसंस्कार कैसे आयें। अब यह ध्यान में आता है कि जान बूझकर नहीं स्व-प्रयत्न से नहीं तो भी परिस्थितिवश कुछ सुसंस्कार प्राप्त होते हैं और कुछ कुसंस्कार भी। जितने हम नये संस्कार बनाते हैं व अगर अच्छे बनायें तो उनसे कुसंस्कारों को काट सकते हैं और कुसंस्कार खतम हो सकते हैं। अच्छे संस्कार बनाना भी कठिन है। उनके जरिये कुसंस्कारों को काटना भी कठिन है। फिर भी यह कुछ कार्य हो सकता है। उससे भी कठिन कार्य है उन संस्कारों की स्मृतियों को हटाना। मान लीजिये मेरे पास सात खोटे कुसंस्कार थे और फिर मैंने सात सोने सुसंस्कार हासिल किये तो सात-सात हुए। यह हो सकता है। नये सात शुभ संस्कार बनाये जायँ तो उनके बदले पुराने सात कुसंस्कार खतम हो सकते हैं। लेकिन उनकी जो स्मृतियाँ हैं, वे कैसे खतम हों ?

स्मृति में अंकगणित नहीं बीजगणित

हमने पराधीनता मिटाकर स्वाधीनता प्राप्त की लेकिन रेकार्ड से पराधीनता मिट नहीं सकती। रेकार्ड में पराधीनता को भी लिखा जायगा और उसके बाद की स्वाधीनता को भी। विचारों में से पराधीनता गयी लेकिन स्मृति से नहीं गयी। स्मृति में अंकगणित नहीं होता बीजगणित होता है। अ − ब = जो कुछ बनता है उसमें अ और ब दोनों कायम

रहती हैं। इसलिए पुरानी गलत स्मृतियाँ याद आती हैं और उनको मिटाने की बात कही जाय तो और याद आती हैं। अतः साधकों के सामने अत्यन्त कठिन समस्या है कि स्मृतियाँ कैसे हटें ? जोरदार प्रयत्न से हम दुर्संस्कारों को तो हटा सकते हैं, लेकिन उनकी स्मृतियाँ कैसे हटें ?

मनुष्य के अपने पराक्रम से स्मृतियाँ जलती नहीं

जो लोग नास्तिकता की बात करते हैं उनके पास इसका उत्तर नहीं है। वे जानते ही नहीं कि सारी बातें कितनी गहरी हैं। वे समझते हैं कि मामूली व्यवहार में ईश्वर की क्या जरूरत है। लेकिन वे समझते नहीं कि स्मृतियों को हटाने जाओ तो दोहरी स्मृति बन जाती है। स्वप्न में भी वह आती है। इसलिए यहाँ पर ईश्वर कृपा का सवाल आता है। साधक के सामने अत्यन्त कठिन समस्या यही है कि निरंतर शुभ-संस्कार हासिल करने की कोशिश करने पर भी पचास साल पहले एक खराब शब्द सुना था वह आज याद आता है। इन स्मृतियों को हटाने के लिए भगवान् ने मरण की योजना की है, ताकि दूसरे जन्म में पुराना कुछ भी याद न रहे। हम काया को अग्नि में जला देते हैं तो खत्म हो जाती है। लेकिन यह ईश्वरीय योजना है। आपके पुरुषार्थ से वे स्मृतियाँ नहीं जलतीं।

स्मृतियों को हटाने की युक्ति

स्मृतियाँ खत्म हों तो उनका परिणाम रहता है जो नयी स्मृति बन कर आता है। इसलिए मुक्ति-काम नहीं होता। आपकी सम्मत्ति में हम पूर्व स्मृतियों को हटा सकें तभी मार्गदर्शन संभव होगा। आज हमने उसके लिए एक तरीका अपनाया। बचपन में भी हम ऐसा ही करते थे। उस समय हम कविता लिखने का शौक था। तीन चार दिन बहुत मेहनत करके अच्छी कलाकृति बनी ऐसा मालूम होता और मुझे सम्पूर्ण समाधान होता तो मैं वह कविता अग्निनारायण को समर्पित कर देता था। फिर जब मैं काशी गया तो कविता लिखकर गंगाजी को अर्पित कर

देखा था। आजकल बहुत-से कवियों की कविताएँ छपती हैं। मेरा ख्याल है कि मेरी भी कविताएँ छपतीं तो उनका प्रथम नहीं, तो दुय्यम दर्जा तो माना ही जाता। लेकिन मैंने सोचा कि मुझे प्रथम दर्जा मिल सकता है तो दुय्यम नहीं चाहिए। मुझे कवित्व-शक्ति नहीं चाहिए, भक्ति चाहिए। इसलिए जब मैं गीताई लिखने बैठा तो मुझमें मानो प्राण-संचार हुआ। आज गीताई महाराष्ट्र के घर-घर में पहुँची है। अगर मैंने पुरानी सारी कविताएँ नहीं जलायी होतीं तो मैं नहीं समझता कि भगवान् के उन शब्दों के साथ मैं इतना एकरूप हो पाता।

गांधी निधि ने मुझसे कहा कि आप गांधीजी के पत्रों का दान कीजिये। आपके पास कुछ पत्र तो अवश्य होंगे। हमें उन्हें लिखना पड़ा कि गांधीजी के जितने पत्र हमारे पास आये हमने दो-तीन दिन तक अपने पास रखे। उस पर चिन्तन मनन किया और फिर फाड़ डाले। इस तरह फाड़ डालने की हिम्मत जिसमें नहीं होती है वह मनुष्य पुरान इतिहास के भूत से नहीं बचेगा। मेरी यह बात सुनकर लोगों को दुःख हुआ। उनको लगा कि इसने गांधीजी के पत्र फाड़े। यह तो बिलकुल मूर्ति-भंजक है।

पुराने पत्रों की होली

इधर हमारे मित्रों ने हमारे लिखे हुए पत्रों की भी प्रतिलिपियाँ रखी थीं। हमने कहा कि आज १५ अगस्त का दिन है तो हमारे उन सब पत्रों को जला दो। यह सारा कब तक याद रखोगे? यह मोह-जंजाल नहीं छोड़ेंगे तो आगे की खोज कैसे होगी? इसलिए हमारे पास जितना था, उतना सब अभी जलाकर हम यहाँ आये हैं। जलाते समय हमने सबको इकट्ठा किया और वेद-मन्त्रों के साथ उन पत्रों को जला दिया। जैसे शव को जलाना पड़ता है उसी तरह उनको जलाया। श्मशान-विधि का सारा कार्य पूरा कर अभी मैं यहाँ आपके पास आया हूँ। इसलिए अभी मेरे पास बिलकुल [illegible] है। पुराना सारा खतम हो चुका है।

आखिर स्मरणशक्ति सिलेक्टिव (चुनाव करनेवाली) होती है। कितनी ही कोशिश कीजिये, तो भी सारा-का सारा याद नहीं आता है। सिलेक्शन (चुनाव) करते समय जो याद करने लायक है उतना याद करो और जो भूलने लायक है उसे भूल जाओ। यह नहीं बनता है। अपनी बुराई को तो इन्सान भूल जाता है। और दूसरे ने अपने साथ कोई बुराई की हो तो उसका स्मरण पक्का रह जाता है। व्यक्तिगत साधना में और सामूहिक संस्थाओं में भी यही प्रसंग पैदा होता है। मैंने आज साथियों से कहा कि पर्चों के कागज तो फट गये और पुरानी सब स्मृतियाँ खत्म हो गयीं। यदि बाकी तो भी बोलना नहीं है। इस तरह मैं मुक्त मन से आपके सामने विराजमान हूँ।

प्रभु-शरणता

अब हम सोचते हैं कि संस्कारजन्य इन स्मृतियों को कैसे खत्म किया जाय तो वहीं ईश्वर आता है। और किसी प्रकार ईश्वर को दखल देने की जरूरत नहीं है। जैनों ने निर्बन्ध की बात की है। एक-एक मरण में सब खत्म हो जाता है मरते-मरते अनेक जन्मों में सब स्मृतियाँ खत्म होती हैं ऐसा माना है। लेकिन हम इसी जन्म में सबको काटना चाहते हैं। इसके लिए हमारे पास कोई साधन चाहिए। वहाँ पर वह साधन ईश्वर आता है।

जो पिंड में वही ब्रह्मांड में

सारी शक्तियाँ पिंड में नहीं हैं ब्रह्माण्ड में भी कोई शक्ति है। कुछ दर्शन की शक्ति आँख में ही नहीं है शक्ति सूर्य में भी है। सारी शक्ति हमारे [illegible] में नहीं है कुछ शक्ति आकाश में भी है। इसी तरह हमारे शरीर में [illegible] है जिसे हम आत्मा कहते हैं वैसे ब्रह्माण्ड में भी [illegible] इस आत्मा को मदद मिल सकती है। जैसे [illegible] को मिलती है आकाश की मदद [illegible] को मिलती है [illegible] ब्रह्माण्ड की शक्तियों की मदद पिंड को मिलती है। इसलिए

दिल में जो अन्तर्यामी है उसको जब-जब मदद की जरूरत हो, तब वह भगवान से मिलती है। जैसे पेट में तकलीफ हो तो खुली हवा के लिए किसी हिल्-स्टेशन पर भेजा जाता है। इस तरह बाहर से मदद हासिल करने का एक साधन होता है। उसकी जरूरत जब तक नहीं महसूस होती है तब तक वह नहीं मिलती है।

ईश्वर की मदद जरूरी

स्मृतियों को दबाने के लिए ईश्वर की आर्तभाव से प्रार्थना करनी पड़ती है। स्मृति को दबाने की कोशिश हम करते हैं। लेकिन हमारी सारी शक्ति खर्च करने पर भी काम नहीं बना तो ईश्वर की मदद माँगनी पड़ती है। जयप्रकाशजी ने एक लेख लिखा था—इन्सेंटिव और गुडनेस। इस पर कुछ लोगों ने आक्षेप उठाया कि गुडनेस के लिए ईश्वर की क्या जरूरत है? कुछ हद तक यह आक्षेप सही भी है। वहाँ पर ईश्वर निष्ठा की जरूरत अनिवार्य नहीं है। वह काम तो हम एथिक्स (नीतिशास्त्र) से निभा लेते हैं। लेकिन स्मृतियों को कैसे भूला जाय। भूलने की कोशिश करो तो और दृढ़ हो जाती हैं। इसलिए इस समस्या के समाधान में ईश्वर की जरूरत महसूस होती है।

धर्म यानी पुराने अनुभवों का सार

प्रश्न : क्या व्यक्तिगत जीवन में स्मृतियों का कोई स्थान नहीं है?

उत्तर : कुस्मृतियों का कोई स्थान नहीं है, अच्छी स्मृतियों का स्थान है। उनसे भी मुक्त होना आखिरी चीज है। लेकिन कुस्मृतियों से व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में मुक्त होना आवश्यक है। इस दृष्टि से इतिहास बहुत ही खराब विषय है। वह स्मृतियों को कायम रखता है। हमें अच्छा-बुरा सारा याद रखना है, यह दावा गलत है। हमें तो सार लेना चाहिए। धर्म तब बना जब पुराने अनुभवों का सार इकट्ठा हो गया। लेकिन पुराने भले और बुरे—सबका रेकार्ड यानी इतिहास है। आखिर इतिहास याद करके करना क्या है? सारे इतिहास का आखिरी

हम 'मैं' स्वयं हूँ। इसमें सारा इतिहास भरा ही हुआ है। उसे किताब से लेने में क्या रखा है। सारी प्रेरणा मुझमें है ही। कभी-कभी उपन्यास इतने आकर्षक होते हैं कि वे हमेशा याद आते हैं जैसे अपने जीवन की घटनाएँ और इतिहास याद आता है। वैसे ही छोटी कहानी भी याद आती है इसलिए यह सारा मामला बहुत ही पेचीदा हो गया है।

प्रश्न : सेवा का उद्गम कैसे होता है?

उत्तर : सेवा-वृत्ति बहुत ऊँची प्रेरणा से नहीं आती है। हमने पहले ही बहुत सेवा पायी है। हम आसमान से नीचे टपके, ऐसी बात होती तो फिर सेवा भावना आवे या न आवे यह सवाल पैदा होता। जो आसमान से नीचे टपकेगा वह अध्यात्म जैसा मैत्री-काम नहीं करेगा। हमें समझना चाहिए कि हमने बचपन से भर-भर के सेवा पायी है इसलिए अब हमें सेवा करनी है।

प्रश्न : छोटे-छोटे क्षेत्रों में हम क्या करें?

उत्तर : मैंने एक बार कहा था कि हमारी आज यह हालत है कि जिन पर हम प्रेम करते हैं वे हमारे कर्म के साथी नहीं हैं और जो कर्म के साथी हैं वे प्रेम के साथी नहीं हैं। यह भेद मिटाना चाहिए। जहाँ कर्मक्षेत्र और प्रेमक्षेत्र एक होते हैं वहाँ धर्मक्षेत्र होता है। जिनसे प्रेम बना है उन्हें अपने काम में साथ लाना चाहिए। जिनका कार्य में साथ हो गया है उनसे प्रेम करना चाहिए। इस तरह की दोहरी प्रक्रिया करनी होगी। प्रेम क्षेत्र भी कर्मक्षेत्र एक हो जायगा तब धर्मक्षेत्र बनेगा। कुछ लोगों के जीवन के तो और भी टुकड़े हो गये हैं। एक आफिस का साथी दूसरा टेनिस का साथी तीसरा घर का साथी इस तरह उनके अलग-अलग साथी होते हैं। उस व्यक्ति की हर एक तसवीर खींचें तो अलग-अलग दीखेगी। अपने प्रेमीजनों को काम के साथियों के साथ मिलाने की कोशिश हम हर क्षेत्र में करनी चाहिए। कार्यकर्ता अपने घर प्रेम पूर्ण (इच्छा) में यह बहुत ही न्यून विचार है। ब्रह्म व्यापक दृष्टि से सर्वत्र व्याप्त है कार्य में साथ न होगा। होना तो यह चाहिए कि

हमारे प्रेमीजनों के साथ सब अन्यान्य प्रेमीजन बनें। यह प्रयोग जितना सफल होगा उतना सहजीवन का प्रयोग सफल होगा। आज यह होता है कि बेसिक टीचर की पत्नी को बेसिक तालीम कुछ भी नहीं मिलती है। इसलिए वह स्वयं बेसिक टीचर नहीं बन सकती। फिर बच्चों को क्या संगति मिलेगी। जिसकी पत्नी अलग है उसके बच्चे तो अलग हैं ही। इसलिए होना यह चाहिए कि प्रेमक्षेत्र और कर्मक्षेत्र एक हो जाय।

इन्दौर —राजस्थान-समग्र-सेवा-संघ की बैठक में
१५ अगस्त '

१५

सन्तसमूह चलो

भगवत् चिंतन से आध्यात्मिक स्नान

इधर आठ-दस महीनों से हम विष्णुसहस्रनाम पढ़ते हैं। प्रतिदिन यह क्रम चलता है। उसका हमने एक कोष भी बना लिया है। उसका चिंतन चल रहा है। बहुत आनंद आता है। जैसे स्नान करने से शरीर निर्मल होता है और प्रसन्नता मालूम होती है वैसे ही भगवत् चिंतन से आध्यात्मिक स्नान होता है और बहुत ही प्रसन्नता का अनुभव होता है। प्रसन्नता क्या चीज है और किस तरह आती है इसकी चिंता हम नहीं करते। लाख कोशिशें और चर्चा करेंगे, तो भी उसकी मीमांसा नहीं होनेवाली है। अनेकों ने मीमांसा की है लेकिन उसमें किसीको यश नहीं मिला।

निद्रा कैसे आती है?

परमेश्वर के स्मरण से नाममात्र के उच्चारण से प्रसन्नता कैसे आती है यह गहरा विषय है। एक मामूली-सी बात है। निद्रा की अनुभूति सबको होती है लेकिन वह निद्रा किस तरह आती है इसकी कोई मीमांसा अभी तक नहीं हुई है। तत्त्वज्ञानियों के अनेक ग्रंथ पढ़े हैं जिनमें कहा गया है कि निद्रा में क्या होता है। उसका वर्णन और व्याख्या कुछ भी कीजिए उसकी पूरी थाह नहीं आती है। योगशास्त्र में कहा है 'अभाव प्रत्ययालंबना वृत्तिः' निद्रा एक वृत्ति है जिसका आधार अभाव की अनुभूति है। उपनिषद् कहता है कि निद्रा में जीवात्मा परमात्मा में लीन हो जाता है। अज्ञान की ग्रंथि चित्त को लगती है। लीन क्रिया

स्नान होता है मन खुल जाता है तो वह एक विशेष ही अनुभूति है। इसके अलावा मुझे ऐसा भी अनुभव है कि कभी मैं खुली छत में जाता हूँ पहाड़ नदी आसमान की तरफ देखता हूँ तो किसी तरह मेरे अन्तर्गत भाव खुल जाते हैं। यह नहीं कि इस तरह के स्नान के लिए विष्णु सहस्रनाम अनिवार्य है। अनिवार्य कुछ भी नहीं है, सिवा इसके कि हमारा दिल खुला हो। जिससे भगवद्भाव, सद्भाव दिल में प्रविष्ट हो सकें उसके लिए दिल खुला हो इससे अधिक कुछ नहीं चाहिए। दिल का दरवाजा खुला हो निर्व्याज और निरुपाधिक भाव हो तो वह अनुभूति कहीं भी आ सकती है।

अनन्तनामी अनामी

विष्णु सहस्रनाम में भगवान् के हजार नाम बताये हैं। दर-असल भगवान् के नाम कौन बतायेगा? उसके अनन्त गुण हैं और अनन्त नाम हैं। मनुष्य की वाणी से उसके गुण प्रकट हों, यह असम्भव है। हम कितने छोटे पड़ते हैं! इनमें से जो परम-ज्ञानी हैं, गम्भीर हैं, भगवत् कृपा से जिनमें वाक्शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ है उनकी वाणी भी छोटी पड़ती है जहाँ भगवद्-वर्णन का प्रसंग आता है। लेकिन साधकों की साधना के लिए ये सारे साधन बनाये गये हैं जिनमें विष्णु सहस्रनाम भी एक है। कहीं-कहीं भगवान् के चौबीस नाम बताये गये हैं। कुरान शरीफ में भगवान् के ९ नाम बताये गये हैं। पारसियों ने भी इस तरह भगवान् के नाम गिनाये हैं। रामदास स्वामी ने लिखा है "चौबीस नामी सहस्र नामी अनन्तनामी तो अनामी। तो कैसा जाणें अन्तर्यामी विवेकें ओळखावा।" भगवान् के चौबीस नाम कहे गये हैं सहस्रनाम कहे गये हैं। उसके तो अनन्त नाम हैं फिर भी वह अनामी है। वह अन्तर्यामी भगवान् कैसा है यह विवेक से ही जाना जा सकता है। इस तरह उसको जानने का एक साधन बताया गया है।

एक अनोखा शब्द

आज मैं विष्णु सहस्रनाम पढ़ रहा था तो एक शब्द की तरफ मेरा

ध्यान खिंचा। इस तरह कभी-कभी कोई शब्द ध्यान खींचता है। व्याकरण के अनुसार भगवान् के नाम उसमें एकवचन में बताये गये हैं। जैसे दामोदरः केशवः, माधवः—लेकिन उसमें एक नाम बहुवचन में आया है जो एकदम ध्यान खींचता है। कुछ के कुछ नाम एकवचन में और एक ही नाम बहुवचन में। वह नाम है सन्तः—इस पर मैं खूब सोचता रहा। मेरा संस्कृत का जितना ज्ञान है, उसको लेकर मैं ढूँढ़ता रहा। सन्त नाम का कोई अकारान्त शब्द होता तो उसका एकवचन कैसा बनता। सारे एकवचनों के प्रवाह में यह एक बहुवचनवाला शब्द कुछ असम्य-सा लगता है। यह शब्द एकवचन बने तो ठीक होगा, यह सोचकर मैंने उसे एकवचन बनाने की काफी कोशिश की, लेकिन उसमें सफलता नहीं मिली।

पुरुष-विशेष को भगवान् नहीं मान सकते

सत्पुरुषों के समूह का भगवन्नाम के तौर पर ग्रहण किया है और यह बहु-वचन का शब्द बनाया है। किसी एक सत्पुरुष को ही भगवान् माना जा सकता है। ऐसे पत्थर को भी माना जा सकता है। अश्वत्थ वृक्ष को भी माना गया है तो फिर सन्त एकवचन में क्यों नहीं कहा गया? इस पर सोचता रहा कि सत्पुरुषों में एक-एक भगवत्कला प्रकट होती है तो साकल्य का आरोप किसी एक पर करना कठिन होता है। मानव होने के नाते सत्पुरुष में भी कुछ-कुछ गुण और दोष गुणक्षमता के रूप में होते हैं। उनको दोष नहीं मानना चाहिए बल्कि गुण की क्षमता मानना चाहिए। फिर भी उस पर साकल्य का आरोप करना कठिन मालूम होता है। सृष्टि के अचेतन पदार्थों पर साकल्य का आरोप सहज रूप से हो सकता है लेकिन किसी पुरुष-विशेष पर भगवद्-आरोप किया जाय यह कुछ कठिन मालूम होता है। सन्त हुआ तो उस पर भगवद् अवतार का आरोप किया जा सकता है। उसमें भगवान् अंश है ऐसा कहा जा सकता है। भगवान् कृष्ण को हम पूर्णावतार मानते हैं। वह

हम हमारी कृष्ण भक्ति के कारण करते हैं लेकिन पूर्ण और अंश दो शब्दों में ही विरोध है, इसलिए शंकराचार्य ने गीता भाष्य में कि भगवान् अपने एक अंश में कृष्ण रूप में प्रकट हुए—भावक कि कल्पना बाक रहा था कि कृष्ण पूर्णावतार हैं। शंकराचार्य लिखा। कृष्ण को पूर्णावतार माना गया यह भक्तों की भावना थ है। लेकिन शंकराचार्य की भाषा में कहा गया है कि किसी एक विशेष पर साकल्येन परमात्मा का आरोप नहीं किया जा सकता उसमें गुण-दोष होते हैं। हम दोषों को भूलकर उस पर गुणों का करें यह मुश्किल होता है।

ध्यान के पुट से पोटेन्सी बढ़ती है

हजारों वर्षों के बाद किसी पुरुष-विशेष का नाम भगवान आता है। अनेक भावनाओं का पुट चढ़कर, जैसे होमियोपैथी में पोटेन्सी बढ़ायी जाती है वैसे ही ध्यान से उसकी पोटेन्सी बढ़ होमियोपैथी में थोड़ी-सी दवा देते हैं और उस पर अनेक पुट चढ़ाये जाते हैं उसको भोग आता है। 'सर्वेर्नं गुणवर्न किमत्या सर्वेन किया जाय उसकी गुण वृद्धि होती है। कहा जाता यह दवा एक लाख पोटेन्सीवाली है यानी उसमें पुट चढ़ाये ग उसी तरह भगवान् के नामों का ध्यान करके असंख्य ऋषियों ने ध्यान के पुट किसी नाम पर चढ़ाकर उसकी पोटेन्सी बढ़ायी हो होता है। अगर मैं नया विष्णु सहस्रनाम लिखूँ तो उसके नाम प ही ध्यान का पुट चढ़ेगा लेकिन पाँच हजार वर्षों से ऋषि-मुनि ध्यान से पुट जो आज के विष्णु सहस्रनाम पर चढ़े हैं, वैसे उस पर चढ़ेंगे। लेकिन मुमकिन है कि मैं नयी गीता लिखूँ, तो पुरानी गीत गुणों को लेकर उसमें और वृद्धि भी कर सकूँ। यह काम तो असाधारण पुरुष ही करेगा फिर भी यह सम्भव है। परन्तु विष्णु सहस्र पर जो अनेकों के ध्यान के पुट चढ़ चुके हैं वे नये नामों पर कैसे आयें नये नामों से उनका आविर्भाव कैसे होगा! इसलिए होमियोपैथी

इन्दौर से अपेक्षा

आप पूछ सकते हैं कि इन्दौर को 'सर्वोदय-नगर' बनाना है इसका इससे क्या ताल्लुक ? मैं कहना चाहता हूँ कि इन्दौर सत्पुरुषों का समूह बने सन्तः बने, जिसमें कुछ चार लाख लोग आ जायें। सारा इन्दौर इस तरह एक सत्पुरुषों का समूह बने यह असम्भव नहीं है। बहुतों को लगता है कि इस कलियुग में यह कैसे होगा ? बाबा असम्भवप्राय बातें करता है। लेकिन मैंने बिलकुल सादी बातें कही हैं। अगर मैं कहूँ कि मिनिस्टी रिलिंक्विश करे तो यह असम्भव मालूम हो सकता है। अब मैं कहता हूँ कि सरकार टैक्स न ले, दान ले तो लोग कहते हैं कि बाबा को अनुभव से भी अक्ल नहीं आयी। इसने सम्पत्तिदान चलाया तो वह नहीं चला, फिर भी यह ऐसी बात करता है। यह टीका ठीक है लेकिन अब मैं जो सुझाव पेश कर रहा हूँ वह एक आसान काम है। मैंने कहा कि नगर की दीवारों पर जो खराब चित्र हैं उनको हटाया जाय। समस्त नागरिक और नगर-निगम तय करें कि हमारी दीवारों पर गन्दे चित्र नहीं रहेंगे। वहाँ पर हम सत्पुरुषों के वचन लिखेंगे। हमारी दीवारों पर ऐसा कोई भी शब्द या चित्र नहीं रहेगा जो वासना को जाग्रत करेगा। इतनी चीज आप करते हैं तो मैं मानूँगा कि इन्दौर सर्वोदय नगर बन रहा है। इतना छोटा-सा सवाल मैंने आपके सामने रखा है। कहा जाता है कि जिसने एक दफा भी हरिनाम का उच्चारण किया वह मोक्ष की तरफ गमन करने के लिए बद्ध परिकर हुआ। वैसे ही इन्दौरवाले अगर इतना छोटा सा कार्यक्रम करते हैं जिसके लिए ज्यादा त्याग नहीं करना पड़ेगा तो मैं मानूँगा कि इन्दौर में सर्वोदय-नगर बनने की और सत्पुरुषों की जमात बनने की कोशिश हो रही है। इस आशा से मैंने विष्णु-सहस्रनाम में से एक नाम का विश्लेषण आज आपके समक्ष किया।

इन्दौर
१६ ८ ६

—सार्वजनिक-प्रवचन

१६

चित्त-निर्माण और विश्व-समस्याएँ

पद-यात्रा में दृष्टि : चित्त-निर्माण

भारत की यात्रा एक बार पूरी करनी चाहिए, यह विचार मेरे मन में आता है। लेकिन दूर के प्रान्तों का सवाल पैदा हुआ। यहाँ पर अगर हम शारीरिक शक्ति की आवश्यकता मानते हैं तो उस हिसाब से पैदल यात्रा गलत साबित होगी। पैदल-यात्रा के अपने कुछ खास गुण हैं और हर साधन की मर्यादा तो होती ही है वैसी उसकी भी मर्यादा है। पैदल-यात्रा के साथ एक विचार है जिसके कारण चंक्रमणम्, पदचर्या इत्यादि को साधनाओं के तौर पर महान् पुरुषों ने माना है। उस विचार को हमें समझना चाहिए। उसी दृष्टि से मैंने इस पर चिंतन किया। पुराने जमाने में शंकर और रामानुज घूमते थे। उस समय रेलवे जैसे साधन नहीं थे फिर भी पैदल-यात्रा से कुछ द्रुत साधन ऊँट, घोड़ा आदि थे लेकिन उन्होंने उनका उपयोग उचित नहीं माना। उसमें एक दृष्टि थी। वह दृष्टि चित्त-निर्माण की थी।

हम ग्राम-निर्माण आदि की बातें बोलते हैं लेकिन आज मानव के सामने असली समस्या चित्त-निर्माण की है। असम में आज जो प्रसंग उपस्थित है वह दूसरी जगह भी उपस्थित हो सकता है। सब तरफ चित्त तो वही है। दिन-ब-दिन आर्थिक, सामाजिक समस्याओं के मूल में जाने की आवश्यकता प्रतीत होनेवाली है। एक निमित्तमात्र बाह्य कारण हाथ में लेकर हम उसके जरिये चित्त-निर्माण की तरफ जायें तो उसमें से दुनिया की समस्याओं का हल करने का रास्ता मिल जायगा।

चित्त-निर्माण का साधन : प्रवृत्ति और निवृत्ति

विचारकों के सामने हमेशा एक विचार रहा है कि कोई भी बाह्य समस्या का खयाल न करते हुए केवल चित्त-निर्माण की तरफ ध्यान दिया जाना ठीक होगा या कोई बाह्य समस्या, जो कि उस-उस जमाने में उपस्थित है उसे वाहन बनाकर चित्त-निर्माण की कोशिश करना ठीक होगा ? इस प्रकार दो विचार चलते थे। दोनों विचारों में निवृत्ति भी मान्य है और प्रवृत्ति भी। आन्तरिक रूप से निवृत्ति और बाह्य रूप से प्रवृत्ति। जिनमें निवृत्ति मान्य नहीं है वे विचार धीरे धीरे प्रवृत्ति में से व्यवस्था और हिंसा की तरफ जाते हैं। जहाँ प्रवृत्ति ही मान्य नहीं है वहाँ निवृत्ति में से विचार गहराई में जाते हैं और अन्तरंग में, गुहा में प्रवेश करते हैं। अगर उसकी जरूरत हो तो वहाँ भी जाना पड़ता है और जरूरत हो तो हिंसा की तरफ भी जाना पड़ता है। हमने एक मर्यादा मान ली है कि व्यवस्था में जाना पड़े तो भी सत्ता में जाना न पड़े। और सत्ता भी हाथ में लेनी पड़े तो हिंसा की तरफ न जायें। ऐसा मानसिक निश्चय हमने किया है।

प्रवृत्ति चित्त-निर्माण के लिए ही

लोक-कल्याण चाहनेवाले सब लोगों ने ऐसा निश्चय नहीं किया है। वे कहते हैं कि हिंसा और अहिंसा चालू चीज है। लोक-कल्याण के लिए कभी कभी स्थूल हिंसा करनी पड़ती है। इस तरह का विचार माननेवाले लोक-कल्याणकारी आज भी हैं बावजूद इसके कि हिंसा के तीव्र साधन अब आउट आफ डेट—गतवीर्य हो चुके हैं। लेकिन उन्होंने बाह्य निश्चय नहीं किया। हमने एक बाह्य निश्चय कर लिया है। इसलिए हमारे सामने हिंसा का रास्ता बन्द है। हम नहीं चाहते कि प्रवृत्ति को माना जाय और निवृत्ति को न माना जाय। केवल निवृत्ति की भावना [illegible] लिए बिल्कुल बन्द नहीं है। बल्कि व्यक्तिगत जीवन में [illegible] है वह तो गुहा में भी जाती है। इस तरह प्रवृत्ति

और निवृत्ति दोनों का योग हो ऐसी एक प्रक्रिया हमने उठायी है। बाह्य प्रवृत्ति को उगाते हुए चित्त-निर्माण की कोशिश होनी चाहिए। बाह्य प्रयत्न केवल चित्त निर्माण का साधन बनना चाहिए। इस तरफ मैं आप सबका ध्यान खींचना चाहता हूँ।

आलम्बन-शून्यता का आकर्षण

महावीर ने सामूहिक कार्य हाथ में नहीं लिया बल्कि उनको जो मध्यस्थ चिन्तन की प्रेरणा हुई, उसे समाज के सामने रखते हुए वे घूमते चले गये। कोई खास काम उन्होंने हाथ में नहीं लिया। बुद्ध भगवान् ने एक काम हाथ में लिया। यज्ञीय हिंसा रोकने का काम उनके लिए निमित्तमात्र था और उसके जरिये वे चित्त-निर्माण का काम करते रहे। चित्त-निर्माण के लिए समाज की किसी समस्या को उठाना उन्होंने जरूरी माना। इस तरह दो विचारधाराएँ चलती आयी हैं। मेरी अपनी *व्यक्तिगत अन्तःस्फूर्ति होती है जो मुझे बाह्य आलम्बनशून्य चित्त-निर्माण* कार्य की तरफ जोरों से खींचती है। बचपन में कुछ कम खींचती थी लेकिन अब वह खिंचाव बढ़ा है। स्वराज्य-प्राप्ति के बाद तो उस तरफ का खिंचाव और भी बढ़ा है। मैं चाहता हूँ कि आलम्बनशून्य बनूँ, बाह्य-प्रवृत्ति का लगाव न रखते हुए स्व-चित्त-निर्माण और समूह-चित्त निर्माण का काम करूँ। लेकिन एक प्रवाह होता है। गांधीजी के साथ मेरा जो सम्बन्ध बना उसकी रक्षा मेरे लिए आवश्यक है और अयोग्य भी है। मैं नहीं मानता कि उसे रखने से मेरे विकास में बाधा आती। इसलिए प्रवाह-पतित होकर मैंने काम शुरू किया तो मुझे भूदान का काम मिला और अब यह डाकुओं का काम मिला। लेकिन यह कोई स्वतंत्र प्रवृत्ति नहीं उठायी। यह सहज ही आयी।

सहज प्रवृत्ति : भूदान, पदयात्रा आदि

अब सारे भारत ने भूदान की प्रवृत्ति मान्य कर ली है। चाहे स्पेन इस प्रवृत्ति का आधार मैंने चित्त-निर्माण के ख्याल से लिया

लेकिन बापू के साथ मेरा सन् १९१६ से लेकर १९४८ तक, ३२ साल तक जो सम्बन्ध रहा, उसके कारण वह चीज मुझमें आयी। अब वह इतनी अन्दर पैठ गयी है कि वह मेरी नहीं है ऐसा पृथक्करण के लिए मैं भले ही कहूँ, लेकिन उसका कोई उपयोग नहीं है। वह चीज मुझे घेरे हुए है। वह मेरा सेकण्ड-नेचर बन गया है। यद्यपि मूल की चीज की तरफ मेरा खिंचाव कभी कम नहीं हुआ।

असम से मेरे पास कई पत्र आये। सब मुझे बुला रहे हैं। अगर वहाँ कुछ काम करना है तो क्या मुझे पैदल-यात्रा खतम करके जाना होगा? क्योंकि पैदल जाना हो तो बीच में जो प्रदेश है उसमें निष्कारण जाना होगा। इस तरह सोचा जाय तो पैदल-यात्रा विघ्नकारिणी मानी जायगी। लेकिन सोचना चाहिए कि पैदल यात्रा में कोई ताकत है और उसे विकसित करना चाहिए। उससे असम का मसला तो हल होगा ही दूसरे मसले भी हल होंगे।

सत्यनिष्ठ जीवन और उपवास

उपवास की बात उठी थी। उपवासवाली प्रक्रिया कभी-कभी अनिवार्य रूप से उपस्थित होती है। मेरे सामने भी उपस्थित होती है। लेकिन तत्त्वज्ञान की दृष्टि से वहाँ पर कुछ विसंगति पैदा होती है। खास कारण से अनशनादि का प्रयोग करना अच्छा नहीं लगता। हम कोई सत्य-वचन बोलते हैं और हमारा सत्य जीवन है तो सत्य विचार का असर क्यों नहीं होता है? जो असर सत्य विचार से नहीं होता, वह उपवास से क्यों बढ़ाना चाहिए? हम विचार से असत्यवान् मनुष्य हैं तो हमारे उपवास का असर नहीं होगा। लेकिन सत्यनिष्ठ मनुष्य सत्याग्रही जीव काया वाचा मनसा सत्य का आचरण करे तो भी उसका असर नहीं होता। वह हमारे आचरण में कमी है इस कारण न होता हो या सामनेवाले की ग्रहण-शक्ति की मर्यादा है इस कारण न होता हो। पर जो असर सत्यनिष्ठ जीवन में नहीं होगा वह सत्यनिष्ठ जीवन और उपवास से कैसे

होगा ? इसमें मोरारजी जो प्रश्न क्वांटिटी है—धन संख्या है वह क्या करती है इस पर मैं सोचता हूँ, तो ऐसा दीखता है कि मैं डेंजरस ज़ोन—खतरनाक प्रदेश में प्रवेश करता हूँ। अगर उपवास भगवद्भक्ति के तौर पर आता है भगवान् के साथ रहने में—साक्षात् २४ घंटा उनके साथ रहने में—अगर खाने से बाधा आती हो तो उपवास करना ठीक है। तब उपवास हो सकता है। अन्यथा उपवास ठीक नहीं है। बल्कि मैं तो मानता हूँ कि जैसे हम बत्ती को तेल देते हैं वैसे ही आहार देते हैं तो उसे क्यों रोका जाय ? यह मेरी समझ में नहीं आता। बचपन में हम एकादशी रामनवमी आदि पर उपवास करते थे। चित्त में राम और कृष्ण की भक्ति आज भी खूब भरी है लेकिन आज यह प्रेरणा नहीं होती है कि रामनवमी के दिन खाना छोड़ूँ या खाने में परिवर्तन करूँ। क्योंकि खाना तो औषध-तुल्य समझकर खाना चाहिए।

चित्त-निर्माण की समस्या

इस तरह उपवास का विचार कइयों के मन में आता है और दीनता के कारण आता है। अगर मैं स्थूल रूप से यह विचार मान्य करता, तो उससे शायद ऐसा दीखता कि बाबा असम के लिए कुछ कर रहा है। लेकिन मैं उस विचार को छोड़ता हूँ और अपनी पैदल-यात्रा जारी रखता हूँ और फिर भी सोचता हूँ कि असम को कैसे मदद पहुँचे तो वह चित्त-निर्माण का सवाल हो जाता है। असम में बंगालियों को राहत देनी है वे लोग कैम्पों में पड़े हैं। सन् १९४९ में मैंने यह काम किया है। लेकिन उस समय भी प्रधान बात चित्त निर्माण की ही थी। गांधी निधि ने अपनी रिपोर्ट पेश करते हुए हमसे कहा कि एक-एक स्थान पर एक-एक व्यक्ति का रखा जाता है। इस पर मैंने पूछा कि चार-पाँच को साथ क्यों नहीं रखते हैं ? तो उन्होंने कहा कि उनमें एक-दूसरे की बनती नहीं है। ये सब बात चित्त-निर्माण की समस्या पेश करती हैं।

क्षोभ का कारण स्पर्द्धा-समस्या

दूसरा विचार यह आता है कि हम कब तक हम छोटे-छोटे मजदूरों

न पड़े ! जहाँ भी मानसिक क्षोभ होता है, वहाँ बुराई आती ही है। मेरे पास एक पत्र आया कि असम में स्त्रियों पर अत्याचार हुआ। मैं नहीं जानता कि यह कहाँ तक सही है। अगर सही हो तो मेरी समझ में नहीं आता कि भाषा के झगड़े पर झगड़े और मारकाट हो भी सकती है लेकिन स्त्रियों का सम्बन्ध कहाँ से आता है ! मैं असमियों को दोष नहीं देना चाहता क्योंकि वहाँ की स्थिति को मैं जानता नहीं हूँ। लेकिन हमें सोचना चाहिए कि ये सब बातें क्यों होती हैं। क्षोभ के कारण चित्त बेकाबू दौड़ता है। किसी भी कारण उसे दौड़ने का मौका मिला, तो जो राहें बनी हुई हैं उन पर वह दौड़ता है, चाहे मानसिक मसला हो राम का हो या और कोई हो। मानसिक क्षोभ-प्रकाशन के जो जरिये हैं वे सब प्रकट होते हैं। उसमें मानव की हीनता प्रवेश करती है। बाकी वहाँ पर कोई उस अंश को स्वतन्त्र रूप से हटाने की कोशिश करेगा तो उसमें जरूरत नहीं है। क्योंकि लोग स्वयं मानते हैं कि यह काम गलत है फिर भी क्षोभ के प्रसंग में यह सब होता है।

पक्ष में प्रवाह

अभी जयप्रकाशजी ने बिहार के काम का जिक्र करते हुए कहा कि वहाँ पर अच्छा काम चल रहा है। पहले से ज्यादा काम होता है परन्तु उससे वह ताकत नहीं बनती थी। अच्छे ग्राम बन रहे हैं, लेकिन एकाध ग्रामदान का असर देश पर नहीं होता है। अब सवाल यह है कि आपको समय कितना मिलनेवाला है ! सामान्य समय में सभी ही जयप्रकाश मिले लेकिन आज की परिस्थिति इतनी उलझी हुई है कि कोई नहीं कह सकता कि किस वक्त क्या होगा। अभी पण्डितजी विदेश गये थे। एक देश के मुख्य व्यक्ति से बात करने बैठे। दो तीन दिन बाद ही उधरी सरकार वहाँ नहीं रही। शिखर-सम्मेलन का क्या हुआ हम सब देख ही रहे हैं। ऐसा सब चल रहा है। तो आप शान्तिपूर्वक नव-निर्माण का काम करते चले जायें, यह कैसे बनेगा ? प्रत्येक को सोचकर

की तरफ से आश्वासन मिला था कि जब तक मेरा काम पूरा नहीं होगा, तब तक मैं नहीं जाऊँगा। लेकिन यहाँ बीच-बीच में दंगे खड़े होते हैं उस हालत में हमें क्या करना चाहिए?

निर्माण का मूल

दुनिया की हालत का देश पर असर होता ही है। देश के अभाव से हम निर्माण-कार्य करें तो बीच में कई चीजें दखल देती हैं और हमारा निर्माण खतम होता है। मैं यह सब इसलिए नहीं कह रहा हूँ कि निर्माण-कार्य नहीं करना चाहिए, बल्कि इसलिए कह रहा हूँ कि हमारा अपना चित्त निर्माण होना चाहिए। सन् १९४९ में मैंने मेव भाइयों की कुछ सेवा की। लेकिन मेरा खास कोशिश करने पर भी परिणाम कुछ भी नहीं निकला सिवा इसके कि भूमिहीनों की तरफ से माँग पेश हुई और इस काम की तरफ मेरा चित्त गया। जहाँ आप खास निर्माण की बात करते हैं वहाँ अवकाश होगा ही। इसलिए चित्त-निर्माण के ख्याल से हम कोई चीज हाथ में लेते हैं तो वह काम बने या न बने तो भी चित्त निर्माण होता ही है।

सरकार-निरपेक्ष कार्य का प्रयोग

क्या हम किसी एक क्षेत्र में ऐसी हवा पैदा कर सकते हैं कि वहाँ सरकार की जरूरत महसूस न हो? मैंने बिलकुल अन्तिम चीज कही है लेकिन उसीको हाथ में लेकर काम किया जाय—बावजूद इसके कि सरकार अच्छी हो तो भी सब जगह काम होते हैं। अगर हम ऐसा क्षेत्र निर्माण कर सकते हैं कि वहाँ सरकार की जरूरत न हो तो कुछ दुनिया को कायम कर सकते हैं। आज सारी दुनिया की आकांक्षा है कि ऐसे कुछ प्रयोग चलें। दुनिया इन सरकारों से तंग है। अच्छी-से-अच्छी सरकार से भी दुनिया तंग आ गयी है। अभी इंग्लैंड में चुनाव हुए थे। चार पार्टी यह नहीं कह सकती थी कि हम अच्छा राज्य लायेंगे। क्योंकि कुछ तो वहाँ पर है ही। लेकिन वहाँ ऐसी कोई

पार्टी नहीं होती जो कहती कि इंग्लैंड का आज का जो धन है उसका आधा हम रखेंगे और आधा दुनिया को बाँटेंगे तो वह आज बेवकूफ कही जाती लेकिन कल वही पार्टी टिकती। अगर चुनाव में इस तरह का काम हो तो उसमें कुछ जायका आयेगा। सार यह कि दुनिया के सारे देशों में चाह है कि सरकार की ज्यादा जरूरत न रहे। क्या यह संभव है! क्या यह स्वप्नवत् ही है! हिन्दुस्तान में कहीं पर इसका प्रयोग करें और उसके स्थूल चिह्न के तौर पर अदालत और पुलिस की जरूरत न पड़े यों कहकर समाज को बना सकें, तो वह करने जैसी कोशिश है। अगर कहीं ऐसा क्षेत्र बनाया जा सकता है तो मैं भी उसकी तरफ ध्यान देना चाहता हूँ।

आज की प्रथम आवश्यकता

वित्त निर्माण और शासन-विहीन शोषण-मुक्त समाज की स्थापना यही दो उद्देश्य लेकर हमें काम करना चाहिए। मेरा मन तो यहाँ तक जाता है कि समाज भले ही शोषण-मुक्त न हो पर शासन-मुक्त तो बनना ही चाहिए। शोषण तो हम सब करते हैं। सारा समाज भंगी का शोषण करता है और भंगी अपनी पत्नी का शोषण करता है। इसलिए बिलकुल शोषण-मुक्ति शायद संभव न हो वह भले चले; लेकिन शासन-मुक्ति के प्रयोग हमें करने चाहिए। वैसे इस तरह की भाषा में एकांगीपन आता ही है, संतुलन नहीं रहता है। यह एकांगीपन चित्त की बात प्रकट करने के लिए तात्त्विक इस्तेमाल करते हैं। जैसे गांधीजी ने कहा था कि सत्य के लिए मैं स्वराज्य छोड़ सकता हूँ। विशेष वस्तु के लिए आदर बताने का उसको आदरपूर्वक कहने का यह एक प्रकार है।

इन्दौर —प्रबन्ध समिति की बैठक में

१०-८ १

उद्योग : सर्वश्रेष्ठ योग

[प्रारम्भ में योगाश्रम के साधकों ने सामूहिक आसन बताये। उसके बाद विनोबाजी का प्रवचन हुआ।]

शरीर-स्वास्थ्य योग का प्राथमिक अंग

आपके सामूहिक आसनों का कार्यक्रम देखकर बहुत आनन्द हुआ। बचपन में मैं जब बड़ौदा में था, इस प्रकार के आसन देखा करता था। सन् १९०५ से लेकर १९१६ तक लगभग ग्यारह साल मेरे बड़ौदा में बीते। वहाँ एक अच्छी व्यायामशाला थी, जिसके प्रोफेसर माणिकराव भारत में मशहूर हो गये हैं। उनके योगासन हम देखते थे। और भी व्यायामशालाएँ वहाँ चलती थीं। प्रोफेसर माणिकराव के शिष्य गुणे थे, जिनका नाम अब कुवलयानन्द हो गया है। वे उस समय वहीं पर थे। उम्र में मुझसे बड़े थे, लेकिन उनसे मेरा परिचय था। वे इस प्रकार सारे आसन करते थे और कराते थे। हम देखते थे, फिर हमने भी कुछ करना शुरू कर दिया। योग-सोपान-पूर्वचतुष्क नाम की एक किताब उस समय हमें मिली। उसमें चित्र भी थे और विधि भी थी। उनको देख-देखकर हम भी कुछ किया करते थे। आज आपने यहाँ पर जितने आसन बताये, वे सब हमने किये हैं। जो आपने नहीं दिखाये, वे भी किये हैं। सिर्फ एक आसन हमसे नहीं बना। हमारे हाथ में कुछ कमजोरी थी, इसलिए मयूरासन हम नहीं कर पाये। क्योंकि उसमें हाथों पर सारा भार आता है।

समाधि-योग गुह्यत-गुह्यतर चीज

आसन तो शरीर-स्वास्थ्य के लिए एक साधन है, पर योग का

बहुत प्राथमिक अंग है। योग का उत्तर अंग धारणा, ध्यान, समाधि है। समाधि जितनी जल्दी लगे उतना अच्छा, ऐसा बचपन में हमें लगता था और हम सोचते थे कि समाधि कैसे लगेगी।

गीता में कहा है कि धीरे-धीरे उपरम प्राप्त होता है और वह धीरे धीरे ही होना चाहिए। सांख्य मार्ग पक्षी के मुताबिक एकदम मुकाम पर पहुँचा देनेवाला है। योग का मार्ग पिपीलिका का मार्ग है। लेकिन बचपन में हमें उतावली थी कि जल्दी समाधि लगे। कम-से-कम उसका भास तो हो। गर्मी की छुट्टियों में हम नल के नीचे सिद्धासन लगाकर बैठते थे। बिलकुल छोटी-सी धार गिरती रहती थी। ऊपर से बूँद-बूँद पानी टपकता रहता था और हम मान लेते थे कि अब हमारी समाधि लग रही है। यूँ होते होते भास होता था कि समाधि लग गयी और चित्त को समाधान हो जाता था। समाधि में घण्टों तक बैठा जाता है। हम भी बैठ सकते थे। हम नहीं जानते कि उस प्रकार समाधि का साधन बहुतों ने किया होगा। लेकिन बाद में मैंने सुना कि प्राकृतिक उपचारवाले कहते हैं कि इस तरह सिर पर बूँद बूँद धार टपकती रहे यह अच्छा है। हम तो पानी की उस धार को भगवान् की कृपा समझते थे। उससे ठण्डक भी पहुँचती थी और मानते थे कि समाधि लग गयी। हम यह नहीं कह सकते कि वास्तविक समाधि लगी। लेकिन समाधि का आभास होना भी बड़ी बात है। अहं ब्रह्मास्मि कह देना भी बड़ी बात है। तुलसीदासजी ने कहा है कि 'बूझत बूझत बूझे'—एकदम समझ में नहीं आता है, धीरे धीरे समझ में आता है। लेकिन समाधि का आभास हो जाए [illegible] ऐसा महसूस हो कि हम बद्ध हैं [illegible] हो [illegible] आभास हो तो दुनिया में कोई ताकत नहीं है जो इन्सान को [illegible]।

[illegible]

[illegible] की [illegible] में [illegible] यह—[illegible]। [illegible] पूर्ण हुई है और सामूहिक [illegible]

की आकांक्षा से हम काम कर रहे हैं। सामान्य जनता का जीवन-स्तर ऊँचा उठे, गरीब और दुःखियों के दुःख में हम हिस्सा लें, सुखी अपने सुख का हिस्सा दूसरों को दें—इस उद्देश्य से बहुत बड़ा योग जिसे सहयोग कहते हैं करना होगा। यह सबसे ऊंचा योग है। एक-दूसरे के सुख-दुःख को बाँट लेना ऊँचा योग है। गीता ने उसे आत्मौपम्यता नाम दिया है और कहा है स योगी परमो मतः। ध्यान-योग की प्रक्रिया का वर्णन करके अन्त में जो श्लोक कहा है उसमें यह बात कही है। फिर आठवें अध्याय में कुछ प्राणायाम की प्रक्रिया बतायी है। लेकिन ध्यान की कुल प्रक्रिया छठे अध्याय में ही बतायी गयी है जिसमें पहुँचे हुए योगी का वर्णन किया गया है और आखिर में कहा है कि वह सर्वश्रेष्ठ योगी है जो आत्मौपम्य से बरतता है अपनी उपमा से सर्वत्र सुख-दुःख देखता है जैसा मुझे सुख-दुःख है वैसा ही दूसरों को भी है, इसलिए दूसरों का ख्याल रखकर जो बरतता है वह योगी सर्वश्रेष्ठ है ऐसा भगवान् ने कहा है। शंकराचार्य इस पर भाष्य लिखते हुए कहते हैं 'अहिंसक इत्यर्थः'—शंकराचार्य ने थोड़े में परिभाषा बतायी कि जो अहिंसक है वह परम योगी है सब योगियों का शिरोमणि है। यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि योगाभ्यास की प्रक्रिया के अन्त में भगवान् ने यह बात कही है।

पारस्परिक ओतप्रोतता का अनुभव योग है

हमने बचपन में, विष्णुपुर में उस तालाब के किनारे, जहाँ रामकृष्ण परमहंस को प्रथम समाधि लगी थी कहा था कि जिस समाधि का अनुभव श्री रामकृष्ण देव ने किया उस समाधि का सारे समाज को अनुभव हो सामाजिक समाधि का हमें अनुभव हो यह हम चाहते हैं। यही हमारा लक्ष्य है और इसे सामने रखकर भूदान का बहाना लेकर हम घूमते हैं। हम चाहते हैं कि सारे समाज का एक-चित्त बने। तब लोग साथ रह जिसे लोग संगठन कहते हैं उस ख्याल से हम नहीं बोल रहे हैं

लेकिन हम चाहते हैं कि उसका यह एहसास हो कि चाहे हमारे शरीर अलग अलग हों फिर भी हम एक ही शरीर में नहीं रहते हैं सारे शरीरों में हम ही रहते हैं; हमें एक स्थूल शरीर मिला हुआ है लेकिन बाकी के शरीर भी हमारे ही हैं जैसे किसी अमीर का सौ सौ कोठरीवाला मकान हो तो उसमें एक-एक कोठरी में एक-एक मनुष्य रहता है लेकिन हर शख्स कहता है कि पूरा मकान हमारा है। हर शख्स पर पूरे मकान की जिम्मेवारी रहती है क्योंकि सब मिलाकर एक परिवार है। सहूलियत के लिए हरएक को एक-एक कोठरी दी गयी है लेकिन वह एक ही कोठरी उसकी नहीं है सब मकान उसका है। किसी कोठरी में गंदगी हो या कोई बीमार हो तो वह सबकी जिम्मेवारी मानी जाती है। उसी तरह हमें रहने के लिए अलग-अलग कोठरियाँ मिली हुई हैं जिसे शरीर कहा जाता है लेकिन सब मिलकर एक ऊँचा मकान बनता है — 'ऊँचा मकान तेरा'— जिसमें हम रहते हैं और जिसकी जिम्मेवारी हम सबकी है। आपमें हम और हममें आप ओतप्रोत हैं। ताने में बाना और बाने में ताना जैसा रहता है वैसे ही हम सब हैं। इसका साक्षात् अनुभव ही इसका नाम है योग।

कर्म एक शक्ति है ध्यान दूसरी शक्ति

पतंजलि ने योग-विवरण में समाधि को आखिरी नहीं कहा है। समाधि के कारण चित्त शुद्धि होती है और उसके बाद विवेक-ख्याति होती है। याने साक्षात् प्रज्ञा प्राप्त होती है। पतंजलि का सूत्र है 'श्रद्धावीर्य समाधिप्रज्ञापूर्वक योगः' —पहले श्रद्धा फिर वीर्य फिर स्मृति और फिर समाधि जिसका जिक्र भक्तियोग में किया जाता है और उसके बाद प्रज्ञा। इस तरह का क्रम बताया गया है। स्थितप्रज्ञ के लक्षणों में गीता में यही कहा है समाधि के बाद जब प्रज्ञालाभ होता है और वह स्थिर बनती है तब मनुष्य स्थितप्रज्ञ बनता है। उसका भावार्थ यह है कि समाधि ध्यान साधन है अंतिम अवस्था नहीं। ध्यान एक शक्ति है जैसे कर्म

एक शक्ति है। कर्म का उपयोग गलत हो सकता है और सही भी। वैसे ही ध्यान भी गलत काम के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है और सही काम के लिए भी। लेकिन कर्म भी भगवत्-अर्पण हो तब वह साधन परमार्थसाधक बन जाता है। वैसे ही ध्यान भी भगवत्-अर्पण हो और सत् कार्य के लिए चले तो पारमार्थिक साधन बनता है नहीं तो वह केवल एक शक्तिमात्र है।

ध्यान और कर्म की प्रक्रियाएँ साधने से प्रज्ञा की प्राप्ति

ध्यान और कर्म परस्परपूरक शक्तियाँ हैं। कर्म के लिए दस चीजें क्रियाएँ करनी होती हैं यानी उन सबका ध्यान करना पड़ता है। अनेक का एकदम ध्यान रखे बिना कर्म नहीं हो सकता। कर्म के लिए अनेक वस्तुओं का सावधानी से एक साथ उपयोग करना पड़ता है। उसमें एक शक्ति विकसित होती है। उससे भिन्न शक्ति ध्यान से विकसित होती है। ध्यान में कुछ वस्तुओं को छोड़कर एक ही चीज का ध्यान किया जाता है। पचास चीजों का ध्यान किया जाय तो कर्मशक्ति विकसित होती है और एक ही चीज पर एकाग्र होने से ध्यान-शक्ति विकसित होती है। जैसे कर्म के लिए अनेक वस्तुओं का उपयोग करना पड़ता है वैसे ध्यान के लिए एक ही वस्तु का करना पड़ता है। दोनों पूरक शक्तियाँ हैं। घड़ी में अनेक पुर्जे होते हैं। उनको अलग-अलग कर दिया जाय तो आपकी कर्म-शक्ति लग गयी। उसके बाद घड़ी के सारे पुर्जों को इकट्ठा करके फिर से घड़ी बनायी जाय तो ध्यान-शक्ति लग गयी। पुर्जों को अलग-अलग करने का काम तो बच्चे भी कर सकते लेकिन एकत्र करना कठिन है। पुर्जों का अलग करना और एक करना इस तरह की दोहरी प्रक्रिया जब सधती है तब प्रज्ञा बनती है। इन दो प्रक्रियाओं में से एक कर्म की और दूसरी ध्यान की प्रक्रिया है। जब दोनों प्रक्रियाएँ सधती हैं तब प्रज्ञा बनती है जो निर्णयकारिणी होती है।

उद्योग

आपने अभी योगासन किये वह एक सुन्दर व्यायाम है। इसकी खूबी

यह है कि इसके लिए न ज्यादा जगह की जरूरत है न औजारों की। इसमें वेग नहीं है एक्साइटमेंट—उत्तेजना नहीं है, जैसे दूसरे व्यायामों में होती है बल्कि इसमें शांति है इसलिए इस व्यायाम से आरोग्य के साथ-साथ शांति का भी लाभ होता है। यह अपने देश की विशेषता है कि साधनों की जरूरत नहीं कम-से-कम जगह और एक शांतिमय व्यायाम! प्राणायाम भी एक व्यायाम है। प्राण और आयाम से यह शब्द बना है। मेरा मानना है कि सब योगों में श्रेष्ठ योग उद्योग है। उद्+योग याने सबसे ऊंचा योग। परिश्रम उत्पादन सबसे ऊँचा योग है। अभी आपने आसन किया। प्राणायाम किया। उसके साथ सात्विक खुराक होनी चाहिए। लेकिन आज देश में सात्विक खुराक है कहाँ? उत्पादन ही नहीं है। हर व्यक्ति के पीछे मुश्किल से डेढ़ छटांक दूध है। इसलिए हमें समझना चाहिए कि सर्वश्रेष्ठ योग याने उद्योग चलेगा तब यह मामूली योग आसन प्राणायामवाला भी चलेगा। उद्योग जैसा सुन्दर शब्द दूसरी भाषाओं में नहीं मिलता। हमारे पास ऐसा सुन्दर शब्द होते हुए भी हम उद्योगशून्य हैं। इस देश में उत्पादन कम-से-कम हो रहा है। मैं कहना चाहता हूँ कि आसन के साथ आप कुदाली भी चलाइये। बिलकुल आसमान के नीचे काम हो तो और उत्तम होगा। दीर्घ प्राणायाम के लिए तो खुला आसमान जरूरी है। लेकिन वह खुली हवा में होना चाहिए।

अच्छे वातावरण में ही योग चलता है

हम चाहते हैं कि सबका आरोग्य सुधरे। शहरों में जो गंदे इश्तहार हैं उन्हें हटाना चाहिए और सब लोग आसन और योगाभ्यास करें। अगर ये गन्दे इश्तहार रहेंगे तो आपके आसन और योगाभ्यास का कोई असर नहीं होगा। लोगों के चित्त पर बुरा असर पड़ेगा और सारी प्रजा वीर्यहीन बन जायगी। इसलिए इन इश्तहारों के खिलाफ लोकमत जाग्रत करना चाहिए और इनकी जगह नैतिक असर डालनेवाले सुन्दर संत

वचन योग-सूत्र गीता बाइबल कुरान धम्मपद आदि के वचन लिखे जायें ताकि इन्दौर शहर ही एक योग-मंदिर, स्वाध्याय-मंदिर, ज्ञान-मंदिर बन जिसमें शिक्षण और संस्कार सबको हासिल हों। इसलिए उन गंदे इश्तहारों के खिलाफ लोक-मत जाग्रत करने का काम आपको करना होगा। इससे आपके लिए सुन्दर वातावरण निर्माण होगा। अच्छे वातावरण में ही योग पनपता है। रात को सिनेमा देखा जाय सुबह देर से उठा जाय उठने पर गंदे चित्र याद आ जायें, तो वातावरण खराब हो जाता है। इसलिए आपको सर्वोदय-प्रचारक बनना होगा। सबके सहयोग से ही आपका यह शहर, इन्दौर सर्वोदय-नगर बनेगा। सद्योग एक श्रेष्ठ योग है।

इन्दौर —योगाश्रम में
१०-८-६

१८ ·

वीरता

शस्त्र-शक्ति और शब्द-शक्ति

दुनिया में जो शक्तियाँ काम करती हैं उनमें लोकमान्य शक्तियाँ दो रही हैं। एक है शस्त्र-शक्ति और दूसरी है शब्द-शक्ति। किसी शुद्ध पुरुष की वाणी से देश को समाज को या दुनिया को शब्द मिलता है और वह सबकी श्रद्धा अपनी तरफ खींच लेता है। यानी सब श्रद्धाएँ उस शब्द में एकत्र हो जाती हैं और शब्द शक्तिशाली बन जाता है। अन्यथा कई शब्द यथार्थ होते हुए भी सही या ठीक होते हुए भी दुनिया में बिखर जाते हैं उन शब्दों से शक्ति का प्रवाह नहीं बहता।

शब्द-शक्ति

शब्द सूझता है किसी ऋषि को किसी चिंतनशील अनुभवी पुरुष को या किसी प्रयोगशील योगी को। लेकिन ऐसा हर शब्द सबकी भावनाओं को आकर्षित कर सके ऐसी शक्ति उसमें हो ऐसा नहीं होता बावजूद इसके कि वह ऋषि वाणी हो वह सत्य दर्शन हो या उसमें दुनिया का भला हो सके ऐसा संभव हो। वह जो अनेकों की श्रद्धा एकत्र होती है, उसको मैं ईश्वरकृति मानता हूँ। किसी ग्रंथ के या किसी ऋषि के शब्द के साथ ईश्वर अपना संकल्प जोड़ देता है तब वह सबकी श्रद्धाओं को आकृष्ट कर सकता है। ऐसा भी नहीं है कि किसी एक व्यक्ति के शब्द में ईश्वर उस व्यक्ति की जिंदगीभर अपनी प्रेरणा भरता रहे। जिनको हमने अवतार माना है उन लोगों के साथ भी ईश्वर की प्रेरणा जिन्दगीभर रही ऐसा नहीं है।

सकते। हम कोई परीक्षक नहीं हैं। यह तो सहज एक विचार मेरे मन में आया सो मैंने कहा। सार यह कि ईश्वर जब कोई विशेष कार्य करना चाहता है तब वह अपना संकल्प किसी विशेष पुरुष के साथ जोड़ देता है और तब वह कार्य होता भी है। लेकिन जब तक वह अपना संकल्प नहीं जोड़ता तब तक शब्द आता है और लोग उसे सुनते हैं। दुनिया में अनेक प्रेरणाएँ चल रही हैं। उनमें से बाबा की भी एक प्रेरणा होती है और उसी प्रकार चलती है। लेकिन जब ईश्वर कोई संकल्प करता है, तो ये चलनेवाली विविध प्रेरणाएँ खतम हो जाती हैं और उनकी सत्ता और शक्ति एक में एकत्र हो जाती है।

विविध प्रेरणाओं का शमन करनेवाला

विष्णुसहस्रनाम में एक नाम आता है : वीरहा। वीरहा का अर्थ होता है वीरों का हनन करनेवाला, वीरों का नाश करनेवाला। लेकिन ऐसा कैसे हो सकता है? ईश्वर वीरों का नाश करता है, ऐसा अर्थ यहाँ कैसे हो सकता है? असुर कहा होता तो समझते कि असुरों का, राक्षसों का नाश करनेवाला। शंकराचार्य ने काफी सोचने पर उसका अर्थ किया है कि वीरहा यानी विविध ईरणाओं का दमन करनेवाला, विविध प्रेरणाओं का शमन करनेवाला। जो विविध प्रेरणाओं को शमन करके सबको एक में एकत्र करता है, वह है वीरहा।

ईश्वर की इच्छा से ही कार्य

मुझे लगता है कि भारत में [illegible] सारे दावेदार लग पड़े हैं [illegible] चाहिए। लेकिन यह तब हो सकता है, जब ईश्वर [illegible] साथ अपना संकल्प जोड़ दे। अगर ईश्वर उनकी प्रेरणा [illegible] तो ये सारे दावेदार एक क्षण में खत्म हो जायँगे। लेकिन [illegible] तो मेरी तीव्र भावना होते हुए भी [illegible] लगता। मैं मानूँगा कि मेरी [illegible] नहीं हो रही है [illegible] ईश्वर की [illegible]

आरम्भ में 'अकेला चलो रे'

जब भूदान शुरू हुआ तब आरम्भ में मैं अकेला ही भूदान माँगता था। एक साल तक भारतभर में एक ही भूदान की सभा होती थी और मैं अकेला जमीन माँगता था। उस समय जमीन मिलती थी और चूँकि वह एक नयी चीज थी इसलिए सबका ध्यान खिंचता था। उस समय एक भाई ने मुझसे पूछा कि इस प्रकार यह माँगने का कार्यक्रम काम पूरा होने के लिए, कितने समय तक चलता रहेगा?

मैंने कहा आप जिस गति को देखकर पूछते हैं उस गति के हिसाब से पाँच सौ साल लगेंगे।

इसपर उसने कहा 'तब यह काम कैसे होगा?"

उन दिनों चुनाव का प्रचार जोरों से चलता था और जगह-जगह सभाएँ होती थीं। भूदान की तो मेरी एक ही सभा होती थी। सर्व सेवा-संघ उसके बाद आया। मैंने उनसे पूछा कि "आज के दिन देश भर में भूदान की सभाएँ कितनी हुई होंगी?"

उन्होंने कहा, "शायद एक ही सभा हुई होगी।"

मैंने फिर पूछा "आज देशभर में चुनाव की कितनी सभाएँ हुई होंगी?"

उन्होंने कहा 'सैकड़ों हुई होंगी।"

तब मैंने कहा "जब देशभर में भूदान की हजारों और लाखों सभाएँ होंगी तब यह काम तुरन्त होगा। वैसा नहीं होता है और जैसा आज चल रहा है वैसा चलता रहेगा तो पाँच सौ साल यह काम पूरा होने में लगेंगे।"

बीघा का अवतार

बाद में हमने देखा कि इस काम में अनेक लोग आये। इसमें कुछ लोग अलग-अलग कामों में लगे थे, उनकी विविध संस्थाएँ खतम हुईं। 'बीघा'—भगवान् का अवतार हुआ और वे सब इस काम में एकत्र हो गये। काम एक हद तक हुआ।

विविध प्रेरणाएँ शुरू

उसके बाद भगवान् ने सोचा होगा—'सोचा होगा' इसलिए कहता हूँ कि मैंने उसके दरबार में जाकर पूछा नहीं। (लेकिन मुझे ऐसा लगता है—भगवान् ने सोचा होगा)—कि अब तक इसके धर्मों में प्रेरणा भरता रहूँ। तब से विविध प्रेरणाओं का काम करना शुरू हो गया।

आज देश में सरकार को छोड़कर और किसी भी संस्था के पास इतनी शक्ति नहीं है, जितनी सर्वोदय-कार्यकर्ताओं के पास है। खादी-कमीशन के कार्यकर्ता, भूदान के कार्यकर्ता, गो-सेवा-संघ के कार्यकर्ता, कस्तूरबा-ट्रस्ट के कार्यकर्ता, गांधी निधि के कार्यकर्ता इस प्रकार सर्वोदय के पास जितनी शक्ति है उतनी शक्ति किसी भी संस्था के पास नहीं है। यह सही है कि जब चुनाव का समय आता है तब पार्टियाँ बहुत-सी शक्तियाँ जुटा लेती हैं लेकिन जहाँ तक नित्य काम से सम्बन्ध है, सर्वोदय के कार्यकर्ता से बढ़कर किसीकी शक्ति नहीं है।

मानवता को शान्ति-सेना ही बचा सकती है

इन दिनों मुझे लग रहा है कि शान्ति-सेना से बढ़कर और कोई प्रेरणा नहीं हो सकती। अपनी विविध प्रेरणाएँ छोड़कर सब इस काम में लग जायेंगे ऐसा इस वक्त मुझे लग रहा है। आज राष्ट्र को ज्यादा-से-ज्यादा जरूरत शान्ति-सेना की है। शान्ति-सेना से 'सैन्य' हट जायगा ऐसा मेरा कहना इस वक्त नहीं है। आज छोटे-छोटे दंगे देश में हो रहे हैं। ऐसे मौके पर अगर शान्ति सेना होती है तो वह इन कुकर्मों को काफी हद तक रोक सकती है। ये कुकर्म तब होते हैं जब मानवता गिरती है। जब मानवता गिरती है तब सामान्य सेना उसको नहीं रोक सकती। ऐसे कुकर्मों के समय शान्ति सेना ही काम आती है।

मुझे लगता है कि शान्ति सेना होगी तो सबकी विविध प्रेरणाएँ खत्म होंगी और सब उसमें जुड़ जायेंगे। इसलिए मैं भगवान् से प्रार्थना कर रहा हूँ कि भगवन्, तेरी प्रेरणा इसमें भर दे तो सबकी विविध प्रेरणाएँ खत्म हों और सबके सब इस काम में जुड़ जायँ। मैंने शान्ति-

सेना के लिए सर्वोदय-पात्र का कार्यक्रम दिया। आज तक एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं मिला जिसने सर्वोदय-पात्र रखने से इनकार किया हो। हर शख्स उसको ठीक मानता है और कहता है "यह सर्वोदय-पात्र कायम रह सकेगा क्या?" 'उसका काम व्यवस्थित ढंग से चल सकेगा क्या?' ऐसे सवाल लोग पूछ लेते हैं लेकिन फिर भी सर्वोदय-पात्र रखने से इनकार नहीं करते और रखने को तैयार हो जाते हैं।

शांति-सेना को सबका समर्थन

सबको लगता है कि शान्ति-सेना की शक्ति बढ़ेगी तो देश की प्राणशक्ति, पुरुषार्थशक्ति बढ़ेगी। सब पार्टीवाले कहते हैं कि यह काम अच्छा है, लेकिन यह हम नहीं कर पाएँगे। जो झगड़े खड़े होते हैं वे पार्टियों के कारण भी होते हैं या पार्टियाँ उनमें कहीं-न-कहीं मिली हुई होती हैं इसलिए वे कहते हैं कि मौके पर हम कुछ शान्ति-सैनिक का काम भले ही कर लें, लेकिन स्वतन्त्र रूप से यह काम हमसे नहीं बन सकता। लेकिन यह काम जरूर बढ़ना चाहिए।

जिस काम को सबके आशीर्वाद हैं और जिसके जरिये हम देश के सभी घरों में प्रवेश कर सकते हैं वैसा यह काम है। हम अगर शान्ति सेना के जरिये अदरूनी दंगे-फसाद के बारे में देश की सरकार को निश्चिन्त बना सकते हैं तो उससे सरकार की ताकत बढ़ेगी। हम गाँव गाँव जाकर गाँवों की ताकत बना सकते हैं। इससे सरकार की चिन्ता दूर होगी और देश की ताकत बनेगी।

शांति का काम होगा तो भूदान आगे बढ़ेगा

जब कभी सरकार के नेताओं से मिलना होता है तो वे अक्सर यह पूछते हैं कि आपकी शांति-सेना का काम कहाँ तक आया, कैसा चलता है? यह काम बने ऐसा सरकार के नेता चाहते हैं। फिर भी अगर सब लोग इसको नहीं उठा लेते हैं तो मैं मानूँगा कि अभी इसमें ईश्वर की प्रेरणा नहीं है। लेकिन मैं यह बात कहता रहूँगा। मुझे लगता है कि इसके बिना आपके भूदान ग्रामदान आदि काम नहीं चलेंगे। आप गाँव में

मसे गये जमीन माँगी लोगों ने जमीन दी लेकिन आप अगर उनसे कहेंगे कि भूदान दीजिये बाकी जीवन के अन्य प्रश्नों के बारे में हम कुछ नहीं कर सकते तो आपके ये भूदान-ग्रामदान आगे नहीं बढ़ेंगे। गाँवों में होनेवाले झगड़े-फसादों में पड़कर उनको रोकने की ताकत लिए मरेंगे तभी भूदान-ग्रामदान वगैरह बढ़ेगा।

ऐसा शब्द मिले, ताकि सारी शक्तियाँ एकत्र हों

मैं भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि इस देश को एक ऐसा शब्द दे कि जिसके कारण सारी शक्तियाँ एकत्र होकर एक साथ काम में लग जायँ। मैं कई दफा मिसाल देता हूँ। एक बड़ा पत्थर पड़ा है। उस पर अगर 'एक दो तीन' बोलकर जोर लगाते हैं तो वह जगह से हटता है, काम हो जाता है। लेकिन अगर मैं आकर दो बजे जोर लगाता हूँ, आप तीन बजे जोर लगाते हैं और वे चार बजे जोर लगाते हैं तो उनको व्यायाम भले ही हो जाय, पत्थर नहीं हटेगा। आप अपनी फुरसत में आयेंगे तो चार पुरुष आपकी राह नहीं देखेंगे। सबको एक साथ जोर लगाकर काम कर लेना चाहिए। बाद में विविध प्रवृत्तियाँ भले चलें। जब हमारे शरीर की स्थिति है कि काम किया तो शरीर में कुछ थकावट आती ही है। फिर निद्रा, आराम किया और फिर स्फूर्ति आ गयी, तो काम में लगे। काम पूरा कर लिया, फिर आराम किया।

इस व्यक्तिशास्त्र की तरह ही समाजशास्त्र में भी चलता है। [illegible] काम चला तो बाद में रीऐक्शन आता है। आदमी को [illegible] आराम, प्रमोद, विनोद आदि की जरूरत होती है। इतने दिन [illegible] गया। अब फिर से एक साथ जोर लगे और [illegible] काम हो और काम कर ले पाते। उसके बाद फिर आराम [illegible] बाद फिर नयी प्रेरणा आयेगी। इसलिए [illegible] काम में लग जाना चाहिए।

[illegible] [illegible]

१९

विकार, विचार और चिंता से मुक्ति

साहित्यिकों की कठिनाई

बचपन से मेरा साहित्य के साथ सतत सम्बन्ध रहा है। हिन्दुस्तान की अनेक भाषाओं के साहित्य से मेरा कुछ परिचय रहा है और बाहर की भाषाओं का भी थोड़ा-सा परिचय रहा है। प्राचीन साहित्य का काफी परिचय रहा है। इन दिनों भी मैं मासिक पत्रिकाएँ देखता रहता हूँ जिससे कुछ झलक मिल जाती है। अखबारों में कभी-कभी नयी किताबों की समीक्षा रहती है। उसे भी देखता रहता हूँ। लेकिन इस वक्त हिन्दुस्तान में जो साहित्य निकलता है उससे मुझे सन्तोष नहीं है।

आधुनिक गद्य-साहित्य का धीरे-धीरे विकास हो रहा है लेकिन साहित्य से जो अपेक्षा होती है और जो करनी चाहिए, वह पूरी नहीं हो रही है। इसका एक कारण तो यह है कि मनुष्यों को जीवन-कलह (स्ट्रगिल फार एग्ज़िस्टेन्स) में टिकने की काफी कोशिश करनी पड़ती है साहित्यिकों को भी करनी पड़ती है। उसमें बहुत-से हार जाते हैं। कई लोग लाचारी से कुछ ऐसे काम ढूँढ लेते हैं और करते रहते हैं जो काम स्वाभाविकतः साहित्य की प्रतिभा के लिए अनुकूल नहीं होते। ऐसे प्रतिकूल परिस्थिति में पड़कर भी कुछ बची हुई साहित्य की प्रतिभा का उपयोग वे कर लेते हैं। लेकिन आज की परिस्थिति एक बहुत बड़ा कारण है। जिस किसीको राज्यतन्त्र सरकार का आश्रय या धनिकों का आश्रय मिलता है वह उससे स्वागताई हो जाता है और दूसरे लोग वैसा आश्रय ढूँढते रहते हैं।

छोटे मसलों में चित्त गिरफ्तार

दूसरी बात यह है कि जमाना किधर जा रहा है किधर जाना जमाने के लिए उचित है लाजिमी है, इसका कोई खास भान साहित्यिकों को होता हो तो नहीं दीखता है। वे तो उससे उल्टी दिशा में ही जा रहे हैं। जगह-जगह अपने आसपास की छोटी-मोटी समस्याएँ हैं और छोटे मोटे सुख-दुःख दीख पड़ते हैं उनमें साहित्यिक उलझ जाते हैं और उसके कारण उस पार का दर्शन पर-दर्शन उन्हें नहीं होता है। उनमें करुणा भी होती है लेकिन उसकी गहराई बहुत कम होती है। कुछ साहित्यिक मजदूरों का वेतन बढ़े उतने में ही अपनी करुणा समाप्त कर लेते हैं। इन दिनों आबादी बढ़ रही है हरिजनों के कुटुम्ब का विस्तार हो तो उन्हें तकलीफ होती है इसलिए कुछ व्यक्तियों की करुणा कुटुम्ब नियोजन के काम में ही समाप्त होती है। ये तो मैंने कुछ मिसालें दी हैं। ऐसे छोटे छोटे कामों में अपनी कारुण्य-वृत्ति को सहानुभूति को जो कवि-हृदय के लिए बहुत आवश्यक होती है वे समाधान दे लेते हैं और विश्व में जो भगवत् प्रवृत्ति चल रही है उसका प्रकाश उन्हें उपलब्ध नहीं होता और छोटे छोटे मसलों में उनका चित्त गिरफ्तार हो जाता है।

कुदरत का स्पर्श नहीं

तीसरी बात मैं यह देख रहा हूँ कि कुदरत का जो स्पर्श चाहिए—कुदरत के दर्शन का और कुदरती जीवन का—वह साहित्यिकों को नहीं होता है। उन्हें शहरों में अलग रहना पड़ता है इसलिए स्फूर्ति का एक बहुत बड़ा स्रोत कुंठित हो जाता है।

शाश्वत मूल्यों से वंचित

चौथी बात मैं यह देख रहा हूँ कि नये मूल्यों की खोज में, उनके मूल्य न नये होते हैं और न पुराने होते हैं इसका भान साहित्यिकों को नहीं रहा है। इसलिए वे बहे जाते हैं और नये मूल्यों के नाम से शाश्वत मूल्यों से वंचित रह जाते हैं।

दोहरा सम्पर्क हो

पाँचवीं बात यह है कि हृदय प्राच-पुरुष से जुड़ा होना चाहिए। जो हजार वर्षों के अनुभवों से सम्पन्न हैं उनसे हृदय जुड़ा हुआ हो और बुद्धि आधुनिक प्रवाह से जुड़ी हुई हो यह आवश्यक है। इस तरह का दोहरा संपर्क अर्थात् बुद्धि के जरिये आधुनिक प्रवाह से संपर्क और हृदय के जरिये पुराने प्रवाह से संपर्क साधना मुश्किल हो जाता है। इसलिए व्यक्ति या तो पुराना संपर्क करता है या आधुनिक। बुद्धि अद्यतन और हृदय प्राचीनतम से संयुक्त हो यह तो एक योग ही है। यह योग आज के साहित्यिकों का नहीं सध रहा है।

साहित्यिक मुक्तात्मा हो

एक बात जरूरी है कि साहित्यिक को मुक्तात्मा होना चाहिए, यानि उसके मन और बुद्धि दोनों का समाधान होना चाहिए। इस तरफ आजकल ध्यान नहीं दिया जाता है। और असमाधान में से साहित्य का निर्माण होना यह लगभग व्यापक बन रहा है जो उत्तम साहित्य के निर्माण में बाधक साबित हो रहा है।

साहित्यिक बनो

आप आश्रम में पढ़े होंगे कि ये चीजें कितनी ही बड़ी हों लेकिन हम लोगों के सामने रखने से क्या लाभ है? इसका उत्तर सुनकर आपको और भी आश्चर्य होगा। उत्तर यह कि मैं आपसे तो साहित्यिकों के निर्माण की अपेक्षा करता हूँ। जो काम आपने उठा लिया है उसमें लोक हृदय के साथ सतत संपर्क रहता है। आप सतत घूमते रहते हैं इसलिए पुरजन के साथ सतत रहता है। आपने जो काम उठाया है वह युग प्रवृत्ति होने के नाते युग प्रवाह के साथ आपका संपर्क हो जाता है और एक तरफ सेवक के नाते आपको चित्त-समाधान होता है। ये सब चीजें आपको उपलब्ध हैं इस हालत में आपमें से ही उत्तम साहित्यिक निकलने चाहिए। यह अपेक्षा मैंने रखी है। इसके लिए एक आत्म

विश्वास होना चाहिए कि यह चीज हमको रुचेगी। इसके अलावा यह चीज साधना अपना कर्तव्य है, उसके बिना हमारा काम कच्चा-कच्चा रहेगा यह बात आपके ध्यान में आनी चाहिए।

काव्य के लिए मुक्त मन की आवश्यकता

हम जहाँ-जहाँ जाते हैं वहाँ वहाँ अनेकविध प्रसंग बनते हैं जिनसे बहुत कुछ सीखने को मिलता है। लेकिन वह इस प्रकार सीखना है और सम्भवतः ही करना है ऐसी प्रेरणा अगर रही तो मनुष्य सोचता है। नहीं तो उसका सोचना शिथिल हो जाता है। अनेक विलक्षण प्रसंग आँखों से ओझल हो जाते हैं। कवि की एक दृष्टि होती है। उसमें संकेतों की पहचान होती है। एक छोटा सा संकेत मिल गया तो उसकी बुद्धि में महान् आविष्कार होता है। इस प्रकार के आविष्कार के लिए आप सब मुक्ति की बात करते हैं। लेकिन वह मन मुक्ति इतनी सहज और सुगम होनी चाहिए कि दिमाग बिलकुल मुक्त रहे। कहीं से भी शुभ विचार का संकेत मिलता है तो उसे ग्रहण करने के लिए दिमाग मुक्त खुला होना चाहिए। इस अर्थ में हमने मन मुक्त होने की जरूरत मानी है। अगर हमारा मन मुक्त रहा तो स्वाभाविकतया महाकाव्यों की स्फूर्ति हो सकती है। लघु काव्य कथा आदि के लेखन की भी स्फूर्ति हो सकती है, क्योंकि वह सारा नित्यानुभव का उद्गार ही होगा सहज-प्रकाशन ही होगा। इसलिए वह हल्का होगा। मैं मानता हूँ कि गद्य हल्का होना चाहिए।

'वी आर सेवन' की स्फूर्ति

वर्ड्सवर्थ घूमने निकला। उस समय एक लड़की से मिलना हुआ। उसने लड़की से पूछा कि तुम कितने भाई-बहन हो? उसने जवाब दिया कि हम सात हैं। उनमें से एक चर्च-यार्ड के नीचे सोया है, दूसरे का दफन वहाँ [illegible] है। हम सब वहाँ जाकर बैठते हैं, उसे याद भी करते हैं। इस पर कवि कहता है कि बहन! तुम तो सात नहीं रहे, पाँच ही रह गये, क्योंकि दो मर गये। लेकिन लड़की कहती है कि नहीं, हम

सात हैं। वह इस बात को कबूल नहीं करती कि हम पाँच हैं। वह कहना चाहती है कि जैसे हम पाँच इस वक्त सृष्टि में हैं वैसे और दो अव्यक्त सृष्टि में हैं, लेकिन सातों हैं। उन पर नहीं का आरोप करना गलत है। इस प्रसंग में से वर्ड्सवर्थ स्फूर्ति की चिनगारी पाता है और एक अमर कविता लिख डालता है 'वी आर सेवन'।

कार्य में से स्फूर्ति के नव-पल्लव

हम लोग अच्छा काम करते हैं लेकिन उस काम के साथ सरस्वती की सेवा भी होनी चाहिए। ऋग्वेद में ऋषि सरस्वती की प्रशंसा कर रहा है कि हे सर्वोत्तम माते तू सर्वोत्तम नदी-सी है। जिन नदियों का प्रवाह प्रकट है, वे गंगा-जमुना जैसी नदियाँ उत्तम हैं परन्तु तेरा गुप्त प्रवाह है इसलिए तू सर्वोत्तम है। सब देवताओं में मधु प्रकाश देनेवाली है। हम सब अप्रशस्त हैं। निग्लेक्टेड निन्दित उपेक्षित हैं। हे माता तू हमारी प्रशस्ति कर—इस तरह सरस्वती हमारी प्रशस्ति करेगी। वह बात ध्यान में रखनी चाहिए। दुनिया आपसे सहज ही अपेक्षा करेगी कि आप ऐसे काम में मग्न हैं कि जिसमें स्फूर्ति के नित्य नव-पल्लव पल्लवित होने चाहिए।

आप पदयात्रा के लिए निकलते हैं तो बीच में डेढ़ घण्टा किसी शान्त एकान्त स्थान में बैठकर बिताना चाहिए। हम भी इसी तरह बिताते हैं। हमें उतावली क्या है? अपने जीवन में आराम ही है। इसलिए बीच में एक घण्टा बैठकर चिन्तन-मनन करना चाहिए। सगीत-भजन आदि चखना चाहिए। तीन घण्टे का फासला हो तो चार घण्टे का मानना चाहिए।

निद्रा में विचारों का विकास

बाबा रोज रात को नव आठ बजे सोता है और दिन में भी बीच-बीच में दो-तीन दफा पन्द्रह-पन्द्रह मिनट सोता है। आप लोग भी निद्रा में कजूसी न करें। भरपूर निद्रा लेनी चाहिए। फिर इसी बात

की रखनी चाहिए कि निद्रा गाढ हो। आलस्य और तन्द्रा मे मत पड़ो। निद्रा उषःकाल से भोगे, तो जागृति के समय स्फूर्ति रहेगी। नहीं तो बहुत से आदमी घड़ी तक श्रवण करते हैं लेकिन अस्फूर्ति की अवस्था में श्रवण करते हैं तो वह असर नहीं होता जो होना चाहिए। बुद्धि में आलस्य हो और उस अवस्था में हम सुनते रहें वह बन नहीं सकता। उस अवस्था मे हम कातते रहते है; क्योंकि उसमें हमें बहुत कम काम करना पड़ता है। बहुत सारा काम चरखा ही कर लेता है। उसमें बुद्धि पर भार नहीं आता है। आप सबको चाहिए कि रात को दस से लेकर सवेरे पाँच तक निद्रा लें। उसीसे प्रतिभा खिलेगी। निद्रा का प्रतिभा के साथ बहुत सम्बन्ध है। जो लोग सत्कार्य-योग में निरत हैं उनकी निद्रा समाधि-स्थिति है ऐसा माना गया है। योगियों को बहुत प्रयत्न से जो समाधि हासिल होती है; वह समाधि कर्मयोगी को अप्रयत्नेन लीलान्यायेन प्राप्त होती है। क्योंकि उसकी निद्रा समाधि ही है। वैसे समाधि से भी नुकसान तो होता ही है। बीज को मिट्टी के अन्दर डॉकते हैं तो अन्दर ही उसका विकास होता है और फिर वह अंकुरित होकर फूट निकलता है उसी तरह सोते समय हम सर्वोत्तम विचार करें तो भूमि मे उन विचारों का बीज बोया जायगा और उस पर निद्रा की मिट्टी डाली जायगी, तो उनका अत्युत्तम विकास होगा। अगर निद्रा न होती तो उस तरह का विकास नही हो सकता।

निद्रा समाधिस्थिति

निद्रा मे हम परमात्मा के बिलकुल करीब पहुँच जाते है और फिर वहाँ से शक्ति लेकर लौटते हैं। वेद मे कहा है कि जैसे पक्षी शाम को अपने घोंसले की तरफ जाते हैं वैसे ही मेरी सारी भावनाएँ उस परमात्मा के पास पहुँचने के लिए उस वसति स्थान की तरफ जा रही हैं। पक्षी दिन भर के काम से थक जाते हैं तो आखिर उस एक विश्राम-स्थान की तरफ जाते हैं। वैसे ही सारे जीव थके-माँदे होते हैं दिनभर चिंतन

और कर्म से थक जाते हैं लेकिन निद्रा में भी अगर उन्हें स्वप्न आयें, तो वह एक तरह की सजा ही है। निष्काम-कर्म-योग-निरत मनुष्य की निद्रा समाधि के जैसी होती है। उसमें स्वप्न नहीं आते हैं वह स्फूर्ति-स्थान बनती है इसलिए आपके जीवन में, रात में निद्रा का निश्चित स्थान रहना चाहिए।

निद्रा के प्रयोग

मैंने निद्रा के कई प्रयोग किये हैं। दो घण्टे से लेकर बारह घण्टे तक निद्रा लेने के प्रयोग किये हैं। कुछ दिनों तक मैं बारह बजे सोता था और दो बजे उठता था बाकी बाईस घंटे काम करता था। इस तरह के प्रयोगों के लिए मुझे प्रेरणा थी और मौका भी मिलता था। दो घंटे की निद्रा में भी अनुभव आये वे भी मेरे पास पड़े हैं और जब मेरा शरीर कमजोर था तब पुष्टि के लिए मैंने बारह घंटा निद्रा लेने के प्रयोग भी किये हैं। रात में आठ घंटा और दिन में तीन-चार दफा एक-एक घंटा निद्रा ली है और उसके भी परिणाम आजमाये हैं। कुल मिलाकर मेरी यह राय है कि पचीस से लेकर साठ साल तक के मनुष्य को कम-से-कम सात घंटे और हो सके तो आठ घंटे निद्रा मिलनी चाहिए। उससे आधा घंटा ज्यादा चलेगा लेकिन कम नहीं! इतनी निद्रा की जाय तो स्फूर्ति रहेगी।

काल की सार्थकता

इस तरह कोई नहीं सोचता। सब यही कहते हैं कि नींद से आयु क्षीण हो रही है। कवि कहता है कि नींद में अपनी आयु खत्म क्यों करते हो! लेकिन नींद में आयु खत्म हुई तो जागृति में भी खत्म हुई यह समझना चाहिए। काल सार्थक कब होता है इसका एक विचार मैंने अपने लिए बनाया है। जिस क्षण मन में विकार आते हैं वह क्षण व्यर्थ गया ऐसा मानना चाहिए। जिस क्षण विकार नहीं है वह क्षण चाहे खेल में

बीते चाहे शतरंज के खेल में बीते तो भी वह समय आपने कमाया खोया नहीं। कौनसा समय सार्थक हुआ और कौनसा निरर्थक हुआ, इसकी यह कसौटी है। निद्रा में स्वप्न आये तो वह समय व्यर्थ गया, ऐसा मानना चाहिए। गाढ़ निद्रा आयी तो समय सार्थक हुआ ऐसा मानना चाहिए। क्योंकि गाढ़ निद्रा का जाग्रति में उपयोग होता है।

नींद में जाग्रति और जाग्रति में नींद !

इन दिनों यह जो भ्रम फैला है कि कम-से-कम नींद लेनी चाहिए, यह गलत है। नींद तो पूरी ही लेनी चाहिए। नींद में जो जाग्रति आती है उसीका नाम स्वप्न है। और जाग्रति में नींद आने का नाम है विकार। जाग्रति में नाना प्रकार के विकार पैदा होते हैं तो उसकी मूर्च्छा है ऐसा समझना चाहिए। यह शब्द जैनों का है। हम चाहते हैं कि जाग्रति में विकार न हो। उसीसे निःस्वप्न निद्रा आयेगी। यह बहुत जरूरी है कि रात में माने दिन के अन्त में हम नाम स्मरण करें और पूरी नींद लें। अच्छे साहित्यिक बनने के लिए मैंने आज आपको एक नुस्खा बता दिया।

ऐसा लिखो जिसमें दर्शन हो

अक्सर डायरी लिखने की बात कही जाती है। बापू भी बार-बार कहते थे। लेकिन यह बात मुझे कभी जची नहीं। तुम लोग डायरी मत लिखा करो। उसका कतई उपयोग नहीं है। डायरी लिखने का मतलब है भूतकाल में जाना। इस भूत प्रवेश को टालो। बापू कुछ दूसरी बात कहते थे। वे जो कहते थे वह खुद भी करते थे। खुद अपने लिए जरूरत न हो तो भी करते थे। दो मिनट उसमें देर हुई यह बहुत बड़ी गलती है। यह भी कोई डायरी में लिखने की बात है? कुछ लोग डायरी में अपने दोष लिखा करते हैं वह गलत और कुछ लोग दूसरों के दोष लिखा करते हैं वह भी गलत। मैं कभी बारीक-बारीक बातें

हम जितना आगे बढ़ेंगे संन्यास का एक-एक नया रूप सामने आयेगा और हमें मालूम होगा कि हमें वह नहीं सधा। इसलिए समझना चाहिए कि संन्यास आकांक्षारूप है। हमें अपने जीवन में योग साधना चाहिए। उससे उत्साह स्फूर्ति बनी रहेगी। और फिर जितनी मात्रा से लोग अपने घर में भी नहीं रह पाते हैं उतनी सरलता से हमारी आराम-यात्रा चलेगी।

सौ साल जीना ही है

यात्रा में खाने को जो मिला सो खाते हैं यह ठीक है। क्या खाना यह महत्त्व की बात नहीं है लेकिन कितना खाना यह महत्त्व की बात है। इसलिए नाप-तौलकर खाना चाहिए। व्यसन की चीज का सेवन नहीं करना चाहिए। मसाले वगैरह भी ज्यादा नहीं खाने चाहिए। वैसे हमारा आहार सात्त्विक ही रहता है। लेकिन उसमें भी मात्रा रखनी चाहिए। कोई फल खाता है लेकिन ज्यादा खाता है और दूसरा कोई साग-रोटी खाता है लेकिन परिमित खाता है तो कहना चाहिए कि दूसरा योगी है। यद्यपि फलाहार सात्त्विक है तो भी ज्यादा मात्रा में खाने से खानेवाला योगी नहीं बनता। मैं यह कतई नहीं सुनना चाहता कि हमारा शान्ति-सैनिक बीमार पड़ा। शान्ति-सैनिक और बीमारी इन दोनों में विरोध होना चाहिए। आपके जीवन में सदा सावधानी रहनी चाहिए। जो लोग आरोग्य-सम्पन्न होंगे उनकी बुद्धि और हृदय में भी सावधानी रहेगी। इसके लिए कर्ममात्रा काम का परिमाण कम करना पड़े तो भी परवाह नहीं; क्योंकि भगवान् हमें बहुत आयु देनेवाला है। हम जल्दी मरनेवाले नहीं हैं। हमें सौ साल जीना ही है। उससे ज्यादा भी जी सकते हैं। ईशावास्य ने कहा है 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः' इसलिए जल्दी नहीं करनी चाहिए। कर्म की मात्रा थोड़ी कम करनी पड़े तो भी हर्ज नहीं लेकिन योग की मात्रा कम नहीं पड़नी चाहिए।

आप अच्छे साहित्यिक बनें यहाँ से मैंने आरम्भ किया और आपका

योग में प्रवेश कराया। बिना योग के अच्छे साहित्य में आपका प्रवेश नहीं होगा। यह एक खास बात मुझे आपसे कहनी थी।

अपनी बात

अपने लिए मैं एक बात कहना चाहता हूं। सन् १९१६ में मैंने घर छोड़ा तब इक्कीस साल की उम्र थी। मैंने माना था कि इक्कीस साल और मिल जायें तो काम खतम होगा। ब्रह्म-जिज्ञासा लेकर मैं घर छोड़ कर निकला था। उसके लिए मुझे इक्कीस साल चाहिए थे। पहले इक्कीस साल घर पर मैं बीते थे। उतने ही और चाहिए। सन् १९३७ की समाप्ति के दिन थे और इक्कीस साल पूरे हो गये थे। उस समय मेरा शरीर अत्यन्त कमजोर था। वजन ८८ पौण्ड था। मैंने माना ही था कि अब ज्यादा वजन की जरूरत नहीं है क्योंकि इक्कीस साल पूरे हो चुके हैं। अब समाप्ति है और समाधान भी मुझे मिल चुका। समाधान तो मानने पर निर्भर करता है। मुझे तो बचपन में भी इतना ही समाधान था। बचपन से आज तक मुझे कभी पता ही नहीं चला कि लोगों को समाधान हासिल करने में क्यों तकलीफ मालूम होती है। तकलीफ तो असमाधान के लिए होगी। बचपन में मैं समाधि की कोशिश करता था; यद्यपि मैं मानता था कि समाधि कठिन है। गरमी के दिनों में नल के नीचे पद्मासन लगाकर बैठ जाता था। ऊपर से थोड़ी-थोड़ी धार गिरती थी जैसे महादेव के सिर पर का अभिषेक-पात्र हो। मेरा चित्त शान्त हो जाता था और मैं मानता था कि समाधि लग गयी। वास्तव में समाधि लगती थी या नहीं यह तो भगवान् ही जाने लेकिन मैं उस समय मान लेता था कि मेरी समाधि लग गयी।

सन् १९३८ के आरम्भ में मैंने तय किया था कि मेरा समाधान हो चुका है तो अब समाप्ति होगी। बापू के पास निवेदन पहुंच गया कि मेरा शरीर खतम हो रहा है। ऐसे समय और मेरे बीच चार दिन का ही फासला था। फिर भी मैं अपने काम में इतना तन्मय रहता था कि कभी

उनके पास नहीं जाता था और मैंने यह भी सुना था कि उनके समय की बहुत कीमत है। जब बापू को पता चला तब उन्होंने मुझे बुलाया। कहा कि तुम्हारा शरीर कमजोर है तो मेरे पास रहो मैं उपचार करूँगा। मैंने उनसे कहा कि आपके उपचार पर मेरा कतई विश्वास नहीं है। आपके पास पचासों काम है। उसमें से एक काम है बीमारों की सेवा और उसमें भी पचास बीमार आपके पास हैं, जिनमें से एक मैं हूँ। मेरे हिस्से कितना आयेगा। इस पर बापू बोले कि यह तो ठीक है फिर तुम डाक्टर के पास जाओ। मैंने जवाब दिया कि डाक्टर के पास जाने के बदले यमराज के पास जाना ठीक है। फिर बापू बोले कि हवाफेरी के लिए कहीं जाओ। फिर वे एक-एक स्थान बताते गये—मसूरी उटकमंड बैंगलोर आदि। आखिर मैंने हवाफेरी की बात कबूल की और कहा कि मैं स्थान बदलने के लिए तैयार हूँ। सुनते ही वे खुश हुए और उन्होंने पूछा कि कहाँ जाओगे? मैंने कहा कि वर्धा से पाँच मील की दूरी पर पवनार है, वहाँ जमनालालजी ने एक बँगला बनाया है, वह मुफ्त में हासिल होगा। हवाफेरी के लिए मैं वहाँ जाऊँगा। इस पर बापू बोले कि यह भी ठीक है कि गरीब लोग कहाँ दूर जा सकते हैं! लेकिन बात ठीक तो है बशर्ते कि आज तू जो चिन्तन करता है वह सब छोड़ दे। पवनार चार ही मील की दूरी पर है तो सब लोग चर्चा करने आयेंगे। मैंने कहा कि ठीक है मैं सारा चिन्तन छोड़ दूँगा।

उस समय चार मील चलने की भी ताकत मुझमें नहीं थी। इसलिए मैं मोटर में बैठकर पवनार गया। जब मोटर धाम नदी के पुल पर पहुँची तो 'सम्बार्त्तं मया सम्बार्त्तं मया'—मैंने छोड़ा मैंने छोड़ा, ऐसा कहकर मन में विचार बाँधकर मैं पवनार के उस टीले पर बैठ गया। सिर्फ ज्ञानदेव की एक किताब अपने पास रखी जिसके वाचन का काम उस समय मैं करता था। उसमें सिर्फ आधा घंटा देता था और बाकी दिनभर घूमना और खटना। शरीर कमजोर था इसलिए आरम्भ में मैं १० मिनट खोदता था। धीरे-धीरे उसे बढ़ाया। आहार तो मेरा हमेशा

में देर लगती है। लेकिन मुझे कुछ भी देर नहीं लगी। इस समय गरमी की बहुत ज्यादा तकलीफ हुई। भूख की तकलीफ तो थी ही; तिस पर मैं शरीर में आराम ही महसूस कर रहा था और मेरी सारी कमजोरी हट गयी। जो काम बहुत-सी औषधियों से नहीं बनता वह विकार, विचार और चिन्ता की मुक्ति से बनता है यह मेरा अपना अनुभव है। इसका थोड़ा-सा अभ्यास आप भी करें।

इन्दौर
२१. ८. ६

—गुजरात के कार्यकर्ताओं के बीच